
Durga Sah Municipal Library
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
नैनीताल
Class no. 891.3
Book no. R12W
Rec no. 4301

वह

रविन्द्र नाथ टैगोर

अनुवादक—

कमला राय

प्रथम संस्करण

प्रकाशक



मूल्य
दो रुपया पच्चीस नया पैसा

मुद्रक
साधना प्रिंटिंग वर्क्स
वाराणसी।

१

विधाता लाखों करोड़ों की संख्या में मनुष्यों को उत्पन्न करते ही आ रहे हैं, किन्तु मनुष्य की आशा मिटती नहीं है। वे कहते हैं कि हम स्वयं ही मनुष्य उत्पन्न करेंगे। इसी कारण भगवान् की सजीव गुड़ियों के खेल के साथ उन्होंने अपनी गुड़ियों का खेल शुरू किया। वे अपने हाथ से मनुष्य गढ़ने लगे लड़के कहने लगे 'कहानी सुनाओ।' इसका अर्थ यही है कि भाषा के द्वारा मनुष्य तैयार करो। इसका फल यह हुआ कि कितने ही राजकुमार, मन्त्री-पुत्र, तोता-मैना, गुल-बका-वली, राजा-रानी की कहानी, आरब्य-पारस्य, राबिन-सन-क्रूसो आदि उपन्यास तैयार किये गये। पृथ्वी की जन-संख्या के साथ होड़ चलने लगी। बूढ़े लोग भी दफ्तरों की छुट्टी के दिनों में कहने लगे मनुष्य बनाओ।' फलतः अठारहो पर्व महाभारत रचा गया। प्रतिदिन कहानी लेखक-दल कार्य-व्यस्त हो रहे।

अपनी नातिन की अनुरोध से मैं भी मनुष्य बनाने के काम में लग गया हूँ, ये मनुष्य विशुद्ध खेल के मनुष्य हैं, सच झूठ का दायित्वइसमें नहीं है। कहानी सुननेवाली की अवस्था नौ वर्ष की

है और जो सुना रहा है वह सत्तर वर्ष की अवस्था को अतिक्रम कर चुका है।

यह कार्य मैंने अकेले ही शुरू किया था किन्तु सामग्री का अभाव इतना अधिक था कि पूपू ने भी इसमें भाग ले लिया। एक और व्यक्ति को मैंने साथ रख लिया था, उसके बारे में पीछे बताऊंगा।

बहुत दिनों से जल्द यह कहकर आरम्भ किये गये हैं कि 'एक राजा था।' मैंने आरम्भ किया कि 'एक मनुष्य है।' इसके सिवा लोग जिसे गल्प कहते हैं उसकी आंच तक इसमें नहीं है। वह ऐसा मनुष्य है कि घोड़े पर सवार होकर मैदान पार कर नहीं चला गया। वह एक दिन रात के दस बज जाने के बाद मेरे घर आया। मैं किताब पढ़ रहा था। उसने कहा—"दादा, भूख लगी है।"

राजकुमारों की कहानियाँ मैंने बहुत सुनी है। उनको कभी भूख नहीं लगती। किन्तु इसको शुरू में ही भूख लग गई। यह सुनकर मैं प्रसन्न हो गया। जिस मनुष्य को भूख लगी हो, उसके साथ प्रेम बढ़ा लेना सहयोग होता है। प्रसन्न करने के लिए गली के मोड़ से बहुत दूर नहीं जाना पड़ता।

मैंने देखलिया कि उसे खाने का शौक विशेष है। चबेना चाहे चने का हो, मटर का हो, चावल का हो, वह झट-पट खा जाता है। मिठाई-मलाई रबड़ी मिले तो कहना ही क्या है। किसी-किसी दिन आइसक्रीम पर रुचि बढ़ जाती है। उसका खाना देखने ही योग्य होता है।

एक दिन झम-झम वर्षा हो रही थी। मैं बैठा हुआ चित्र अङ्कित कर रहा था। यहाँ जो मैदान है उसका ही चित्र बना रहा था।

उत्तर तरफ बराबर लाल मिट्टी का रास्ता चला गया है—दक्षिण तरफ परती जमीन, कहीं ऊँची है, कहीं नीची है, कहीं कहीं जङ्गली खजूर की झाड़ियाँ हैं। दूरी पर दो-चार ताल-वृक्ष आकाश की तरफ कङ्काल की तरह ताक रहे हैं उनके ही पीछे घने बादल छाये हुए हैं, मानों एक नीले रङ्ग का बाघ शिकार की चाह में तैयार होकर ताक रहा हो, कब एक ही कुदान में आकाश पर पहुँच कर सूर्य को अपने पञ्जे से पाट देगा। कटोरी में रङ्ग घोल कर तूली से मैं यही दृश्य अङ्कित कर रहा था।

दरवाजे पर किसी ने धक्का लगाया। खोल कर मैंने देखा, डाकू नहीं है, दैत्य नहीं है, कोतवाल का लड़का नहीं है—वही मनुष्य है, उसके शरीर से जल झर रहा है, मैला भींगा कुरता पहने है, जो शरीर से सटा हुआ है। धोती के निचले छोर पर कीचड़ लगा है, जूतों पर कीचड़ के पिण्ड लगे हैं। मैंने कहा—"यह कैसी दशा।"

वह बोला—"मैं जिस समय घर से निकला था, धूप तेज उगी हुई थी। आधा रास्ता पार करते ही वर्षा होने लगी। तुम यदि अपने बिछौने की चादर यदि मुझे दे देते तो मैं अपने भींगे कपड़े छोड़ कर उसी अपना शरीर ढंक लेता।"

हुकुम मिलने का सब्र उसे सहा नहीं गया। उसने झट-पट खाट से लखनवी छीट की चादर, जो बिस्तरे पर बिछी हुई थी, खींच ली और उसी से अपना सिर पोंछ कर पहने हुए कपड़ों को छोड़ दिया और उसी चादर से अपना शरीर ढक कर निश्चिन्त-भाव से बैठ गया। सौभाग्य से काश्मीरी चादर नहीं थी।

इसके बाद वह बोला—"दादा, तुमको मैं एक गीत सुनाना चाहता हूँ।

क्या करूं चित्रांकन बन्द कर देना पड़ा।

उसने शुरू किया—

'भावो श्रीकान्त नरकान्तकारीरे,
नितान्त कृतान्त भयान्त हबे भवे।"

श्रीकान्त का चिन्तन करो, जो नरक का कष्ट दूर करने वाले हैं। संसार में यमराज का भय नितान्त ही मिट जायगा।

मेरे चेहरे का भाव देख कर उसके मन में क्या सन्देह हुआ, मैं नहीं जानता? उसने पूछा—"कैसा लग रहा है?"

मैंने कहा—"तुमको गांव-बस्ती से दूर किसी एकान्त स्थान में बैठकर गला ठीक करने के लिये जीवन के अन्तिम दिवस तक साधना करनी पड़ेगी। उसके बाद, यदि सह सकें तो चित्र्...म समझ लेंगे।

वह बोला—"पूपे दीदी हिन्दुस्तानी उस्ताद से सङ्गीत सीखती हैं, मुझे भी उसके साथ बैठा देने से कैसा होगा?"

मैंने कहा—"यदि तुम पूपे दीदी को इसके लिए राजी कर सको तो मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं है।"

वह बोला—"दीदी से मैं बहुत डरता हूँ।"

सुन कर पूपे दीदी खूब हंसने लगी। उनसे कोई डरता है यह जानकर वह बहुत ही प्रसन्न हो गईं। जिस तरह संसार में प्रबल प्रतापांठित व्यक्तियों को अपनी प्रभुता की बात सुनकर प्रसन्नता होती है।

दीदी ने आश्वासन देकर कहा—"डरने की बात नहीं है, मैं उसको कुछ भी न कहूँगी।"

मैंने कहा—"तुमसे कौन नहीं डरता। दोनों समय दो कटोरी दूध पीती हो, शरीर में बल कैसा है। याद पड़ रहा है तो तुम्हारे हाथ मे लाठी देख कर वह बाघ पूंछ समेट कर नूढ़ू बुआ के बिस्तरे में जा छिपा था।"

वीराङ्गना की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। उसने उस भालू की याद दिला दी, जो भाग चला था और स्नान की कोठरी में जा कर नाद में गिर पड़ा था।

उस समय मनुष्य का जो इतिहास केवल मेरे ही हाथ अबतक बन रहा था, अब पूपे भी उसमें जहाँ तहाँ जोड़ लगाने लगी। यदि मैं कहता कि एक दिन, दिन के तीसरे पहर को तीन बजे वह मेरे पास दाढ़ी कमाने का छुरा और खाली बिस्कुट का टीन माँगने आया था, तो पूपे खबर देती कि वह उससे ऊन बुनने की काणी माँग कर ले गया है।

जितनी भी कहानियाँ होती हैं सब का एक ही अन्त होता ही है। किन्तु 'एक मनुष्य है' इसका तो कहीं भी अन्त नहीं है। उसकी बहन को ज्वर हुआ, वह डाक्टर को बुलाने चला गया। उसके पास टामी कुत्ता है, बिल्ली के नखों का खरोच लगने से उसकी नाक फट गयी। वह बैलगाड़ी पर पीछे से चढ़ गया था, इस कारण गाड़ीवान से उसका झगड़ा हो गया। आँगन में पानी की कल के पास फिसल कर वह गिर पड़ा, धक्का लगने से ब्राह्मण का मिट्टी का घड़ा फूट गया। वह मोहन बगान का फुटबाल मैच देखने गया था,

वहाँ उसकी जेब से किसी ने साढ़े तीन आना पैसा चुरा लिया। लौटते समय रास्ते में भीम नाग की दूकान से मिठाई की खरीद न हो सकी। उसका मित्र कीनू चौधरी है उसके घर जाकर उसने आलू-दम और फकही दाना माँगा। इसी तरहएक के बाद एक लगातार दिन पर दिन कहानी चल ही रही है। इनके साथ पूपे ने जोड़ दिया है कि किसी दिन वह उसके घर आया और अनुरोध करने लगा कि माँ की आलमारी से पाकप्रणाली की पुस्तक ढूंढ़ कर ला दो, क्योंकि उसका मित्र सुधाकान्त केले की रसदार तरकारी पकाने की कला सीखना चाहता है। और एक दिन वह आया और पूपे का सुवासित नारियल का तेल माँग ले गया। उसे शङ्का हो गयी है कि सिर के बाल झड़ रहे हैं, गञ्जा रोग हो गया है। एक दिन वह दीनू दादा के घर गाना सुनने गया उस समय दीनू दादा तकिये के सहारे लेटे हुए थे।

हम लोगों का जो वह मनुष्य है, उसका एक नाम तो अवश्य ही होगा। उसे केवल हम दो ही जानते हैं, और किसी को बताने का निषेध है। इसी जगह कहानी में मजा है। एक राजा था, उसका भी नाम नहीं है। राजकुमार था उसका भी नहीं है। और जो राजकुमारी थी, जिसके सिरके केश जमीन तक लटके रहते थे, जिसके हंसी से मोती झरते थे, आंखों के आँसू से मणियां टपकती थीं, उसका भी नाम कोई नहीं जानता। वे प्रसिद्ध नहीं हैं। फिर भी घर-घर इनकी प्रसिद्धि फैल रही है।

हम इस मनुष्य को केवल 'वह' कहते हैं। कोई भी बाहरी मनुष्य जब उसका नाम पूछता है तो हम एक दूसरे का मुंह ताकने लगते हैं और हंसने लगते हैं। पूपे कहती है, अन्दाज लगा कर बताओ

तो 'प' आरम्भ होता है प्रियनाथ, कोई कहता है पञ्चानन, कोई कहता है पाँचकौड़ी, कोई कहता है पीताम्बर, कोई कहता है परेश, कोई कहता है पीटर्स, कोई कहता है प्रेस्कूट, कोई कहता है पीरबख्श, कोई कहता है पायर खाँ।

+ + +

इसी जगह आकर कलम के रोकते ही एक ने कहा कहानी चल सकेगी तो ?"

किसकी कहानी ? यह तो राजकुमार नहीं है यह है एक मनुष्य वह खाता-पीता है, सोता है, आफिस में जाता है, सिनेमा देखने का भी इसे शौक है। दिन पर दिन संसार में और सभी जो कुछ करते हैं वही इसकी कहानी है। यदि तुम अपने मन में इस मनुष्य को स्पष्ट रूप से गढ़ डालोगे तो देख सकोगे कि जब वह दूकान की चौकी पर बैठकर रसगुल्ला खाने लगता है तब दोने के छेद से उसका रस टपक टपक कर अनजान में उसकी मैली-कुचैली धोती पर चूता रहता है, यही है कहानी। यदि तुम पूछो कि उसके बाद ? तो मैं कहूँगा कि इसके बाद वह ट्राम पर चढ़ गया, अकस्मात् याद पड़ गया कि पैसा नहीं है, तुरन्त कूद पड़ा। उसके बाद ? उसके बाद इसी तरह और भी कितनी बातें हैं। बड़ानगर से बहूबाजार, बहू-बाजार से नीमतला।

उनमें से एक ने कहा—"जो कहीं नहीं है, बड़ाबाजार, बहू-बाजार यहाँ तक कि नीमतला में भी जिसकी गति नहीं है, ऐसी बात को लेकर क्या कहानी नहीं होती।"

मैंने कहा—"यदि होती हो तो जरूर होगी, न होती तो न होगी।"

वह बोला—"तो होने दो। मनमानी होने दो न। सिर नहीं, पैर नहीं, अर्थ नहीं, मतलब नहीं, ऐसी ही कोई चीज।"

यह हुई स्पर्धा की बात। विधाता की रचना है। नियमें बंधी हुई हैं। जो बात होने वाली है, वह अवश्य हो होगी। यह तो सहने योग्य बात नहीं है। ऐसे विधान-कर्ता विधाता का मजाक ऐसी जगह में कर लेना चाहिये जहाँ सजा पाने का कोई लाभ हो। क्योंकि यह तो उनका इलाका नहीं है।

हमारा 'वह' कोने में बैठा हुआ था। धीरे-धीरे वह बोला—"दादा तुम लग जाओ। मेरे नाम से तुम जो भी चाहो वही चला सकते हो, मैं फौजदारी न करूंगा।"

उस मनुष्य का परिचय देने की जरूरत है।

पुपु दादा लगातार जो कहानी सुनाता जा रहा हूँ उस गप्प का मूल अवलम्ब है एक सर्वनामधारी 'वह'। केवल वाक्य से वह बना है। इस कारण इसको लेकर जो भी हो सके वही करना सम्भव है। कहीं भी पहुँच कर किसी भी प्रश्न की ठोकर खाने की आशङ्का नहीं है। किन्तु विचित्रता का प्रमाण देने के लिए एक शरीरधारी को जुटा लेना पड़ा है। साहित्य के मामले में केस जब सम्हलना कठिन हो जाता है, तभी यह मनुष्य लक्ष्य देने के लिए तैयार हो जाता है। कोई भी बाधा नहीं पड़ती। मेरे सदृश मुख्तार का इशारा पाते ही वह अम्लान चेहरे से कहने लगता है कि काँचड़ा पाड़ा के कुम्भ मेले में जब वह गङ्गा-स्नान करने गया था, तब घड़ियाल ने उसकी चोटी का सिरा पकड़ लिया था वह जल में डूब गया, इंठल से छिन्न मानव-देह का बाकी अंश सूखी जमीन पर चला आया है। आँखों में जरा और इशारा कर देने से वह निर्लज्ज हो कर कह सकता है,

जहाज का गोताखोर सात मास तक कीचड़ टटोलता रहा, फलतः पाँच छः केशों के सिवा बाकी चोटी का उद्धार कर लाया है। इस काम के लिए उसे बख्शीश में सवा तीन रुपये मिले हैं। इतना सुनकर भी यदि पूपू दीदी प्रश्न करे कि उसके बाद क्या हुआ तब वह उसी क्षण शुरू कर देगा कि उसने डाक्टर नीलरतन के पैर पकड़ कर कहा था—दोहाई डाक्टर साहब, औषध देकर मेरी चोटी में जोड़ लगा दो, नहीं तो प्रसाद का फूल बांधना रुका हुआ है। उन्होंने सन्यासी प्रदत्त 'वज्र जटी' मलहम लगा दिया, फलस्वरूप चोटी तेज गति से बढ़ने लगी है, लगातार बढ़ने वाले केंचुए की तरह उसकी वृद्धि क्रमशः हो रही है। पगड़ी बांधता है तो वह बेलून की तरह फूलने लगती है, सिरहाने के तकिये पर चूड़ा तैयार होने लगती, दैत्यपुरी के छाते की तरह दृश्य हो जाता है। वेतन पर नाई को रख लेना पड़ा। प्रति प्रहर नाई से बाल कटवाने पड़ते हैं।

इतने से भी यदि श्रोता का कौतूहल न मिटे तो वह करुण मुख से कहने लगता है कि मेडिकल कालेज का सार्जन-जेनरल हाथ का आस्तीन समेट कर बैठा हुआ था। उसने जबर्दस्त जिद पकड़ कर कहा कि सिर के उस स्थान में वह स्क्रू से एक छेद कर देगा, उसमें रबर की ठेपी लाह से जड़ देगा, सील-मोहर लगा देगा। फल यह होगा कि इहकाल या परकाल में वहाँ फिर चोटी उग ही न सकेगी। किन्तु चिकित्सा इहकाल पार कर परकाल तक पहुँच जायगी, इस आशङ्का से वह किसी तरह भी राजी नहीं हुआ।

हमारा 'वह' का लोकोत्तर पुरुष है। करोड़ों में कोई एक ऐसा मनुष्य जगत् में मिलता है। झूठी बातें तैयार करने में उसकी प्रतिभा प्रतिद्वन्द्विता से रहित है। मेरी अद्भुत कहानी का इतना बड़ा उत्तर-

साधक उस्ताद सौभाग्य से ही मिल गया है। मैं कभी इस मनुष्य को पूपु दीदी के सामने हाज़िर कर देता हूँ—उसे देखते ही उसकी बड़ी-बड़ी आँखें और भी बड़ी हो जाती हैं। प्रसन्न होकर बाज़ार से गरम जलेबी मंगा कर खिला देती है। क्योंकि वह जलेबी बहुत ही पसन्द करता है और चमचम मिठाई में भी उसकी विशेष रुचि रहती है। पूपू दीदी उससे पूछती है—तुम्हारा मकान कहाँ है? वह कहता है—कोनगर में, प्रश्नचिन्ह की गली में।

मैं उसका नाम क्योंकि नहीं बताता। नाम बता देने से यह केवल इसी में रह जायंगे यही भय है। जगत् में केवल मैं एकमात्र हूँ, तुम भी वही हो। तुम्हारे सिवा, मेरे सिवा अर्थात् 'तुम' और 'मैं' के अतिरिक्त और सभी तो 'वह' हैं। मेरी कहानी में जितने भी 'वह' हैं, उनके जमानतदार हैं।

एक बात मैं बताये रखता हूँ, नहीं तो अधर्म होगा। उसको मध्य में रख कर जो लीला चला दी गयी है उसी से जो लोग विचार करते हैं वे भूल करते हैं। जिन लोगों ने उसे अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखा है वे जानते हैं कि वह सुपुरुष है, उसका चेहरा सुगम्भीर है। रात्रि में जिस तरह तारकाओं की उजियारी फैली रहती है उसकी गम्भीरता उसी तरह दबी हुई हंसी से भरी हुई है।

वह है प्रथम श्रेणी का मनुष्य, इसी लिए किसी हंसी-मज़ाक से उसे आघात नहीं पहुँचता। उसे मूर्ख की तरह सजा देने में मुझे मज़ा लगता है, क्योंकि 'वह' मुझसे अधिक बुद्धिमान है। नासमझ का मान करने से भी उसकी मानहानि नहीं होती। सुविधा होती है, पूपू के साथ उसका मेल हो जाता है।



२

इसी समय पूपू दीदी दार्जिलिंग चली गयी वह 'माथा बथा' वाली मैं अकेला मेरे साथ रह गया। उसे अच्छा नहीं लग रहा था। मैं भी ऊब गया था। वह बोला—"मुझे दार्जिलिङ्ग भेज दो।"

मैंने कहा—"बताओ, तुम कौन काम करोगे?"

वह बोला—"पूपू दीदी के लिए खेल की रसोई की सामग्री तैयार करूंगा, कागज कूट कर दे दूंगा।"

इतना परिश्रम तुमसे न हो सकेगा। जरा चुप रहो। इस समय मैं 'हुँआऊँ द्वीप' का इतिहास लिख रहा हूँ।

"हुँआऊँ' नाम सुनने में अच्छा लग रहा है दादा! मेरी ही कलम से वह काम तुमसे अधिक अच्छा होता। इस विषय में कुछ आभास दे सकते हो।"

"यह मजाक नहीं है, विषय गम्भीर है, मुझे आशा है कि यह पुस्तक कालेज की पाठ्य-पुस्तक में स्थान पा जायगी। वैज्ञानिकों

का एक दल उस शून्य-द्वीपों में जा बसा है। वे खूब कठिन परीक्षण में व्यस्त हैं।"

"जरा समझा कर कहो—वे लोग क्या कर रहे हैं? क्या आधुनिक प्रणाली से खेती-बारी में लग गये हैं?"

"एक दम उल्टी बात है, खेती से कोई सम्बन्ध नहीं है।"

"भोजन की व्यवस्था क्या है?"

"एकदम बन्द है।"

"जीवन-रक्षा कैसे होगी?"

"इसकी चिन्ता ही सबसे तुच्छ है। पाकयन्त्र के विरुद्ध उनका सत्याग्रह चल रहा है। उनका कहना है कि उस जारयन्त्र की तरह पेचीली चीज और कुछ भी नहीं है। जितने भी रोग हैं, जितने भी युद्ध-विग्रह चलते हैं, चोरी डकैतियां होती हैं, इन सब का मूल कारण है उसकी नए नस में विद्यमान है।"

"दादा यह बात सच होने पर भी इसे हजम करना कठिन है।

"तुम्हारे लिए कठिन है। किन्तु वे लोग वैज्ञानिक हैं। पाकयन्त्र को उन्होंने उखाड़ दिया है, पेट दचक गया है, भोजन बन्द है, केवल नस्म ले रहे हैं। नाक से पौष्टिक आहार हवा के द्वारा ग्रहण कर रहे हैं। कुछ तो भीतर पहुँच रहा है, कुछ छींकते-छींकते बाहर निकल जाता है। ये दोनों ही काम एक साथ चल रहे हैं। शरीर साफ भी हो रहा है, मर भी रहा है।"

"यह तो आश्चर्यजनक उपाय निकाला है। शायद पीसने की मशीन कायम हुई है। बतख-मुर्गी, लस्सी-भेड़, आलू-परवल एक साथ पीस कर डिब्बों में भरते जा रहे हैं।"

"नहीं। पाकयन्त्र और कसाईखाना इन दोनों को इस संसार से लुप्त कर देना चाहिये। पेट पालने के लिए बिल चुकाने का बखेड़ा मिटा ही देंगे, चिरकाल के लिए संसार में शान्ति-स्थापना का उपाय सोच रहे हैं।"

"तो यह नस्य ग्रहण शस्त्र को लेकर नहीं होता, क्योंकि वह तो क्रय-विक्रय का मामला है।"

"समझा कर कह रहा हूं। जीव-लोक में उद्भिद् का जो अंश है, वही प्राणों का मौलिक पदार्थ है, इसे तो तुम जानते हो?"

इस पापी मुख से मैं कैसे कहूँगा कि मैं जानता हूँ, किन्तु बुद्धिमान व्यक्ति यदि नितान्त ही जिद कर बैठेंगे तो उस हालत में मान ही लूंगा।"

दूर्वावन पण्डितगण घास से हरे अंश को निकाल रहे हैं वही है सार भाग। सूर्य के बैंगनी रङ्ग के प्रकाश वे उसे सुखा डालते हैं, फिर मुट्ठी-मुट्ठी लेकर नाक में ठूस रहे हैं। प्रात:काल दायीं नाक से दोपहर को बायीं नाक से, सन्ध्या को दोनों ही नाकों से एक ही साथ ऐसा करते हैं। यही है बड़ा भोज। उन लोगों को समवेत छींकने की आवाज से पशु-पक्षी चौंक कर समुद्र तैर कर उस पार चले गये हैं।"

"सुनने में यह अच्छा लग रहा है। बहुत दिनों से बेकार हूँ दादा, यह पाकयन्त्र भार बनता जा रहा है—तुम लोगों के उस नस्य की यदि मैं न्यूमार्केट में दलाली कर सकता तो उस हालत में—"

थोड़ी-सी बाधा उपस्थित हुई है, पीछे बताऊँगा। उन लोगों का एक मत और है। वे कहते हैं मनुष्य अपने दोनों पैरों से खड़े

होकर चलते हैं, इसका कारण उनका हृदयन्त्र, पाकयन्त्र झूलते-झूलते रहे हैं, लाखों वर्षों से अस्वाभाविक अत्याचार चल रहे हैं। आयुक्षय करके उसका जुरमाना दिया जा रहा है। इस झूलते हुए हृदय को लेकर स्त्री-पुरुष मर रहे हैं। चतुष्पदों की ऐसी कोई बाला नहीं है।"

"मैं समझ गया, किन्तु उपाय क्या है?"

"उनका कहना है कि प्रकृति का मूल उद्देश्य शिशुओं से सीख लेना पड़ेगा। उस द्वीप में जो पहाड़ सबसे ऊंचा है, उस पर शिलालिपि से अध्यापक ने खोद रक्खा है—यदि बहुत दिनों तक इस पृथ्वी से सम्पर्क रखना चाहते हो तो बकैयां चाल चलो, चतुष्पदी चाल से लौट आओ।"

शाबाश! शायद अभी कुछ और बाकी है।"

"है। वे लोग कहते हैं, बातें करना मनुष्य रचित है। वह प्रकृति प्रदत्त नहीं है। उससे प्रतिदिन श्वास का क्षय होता रहता है, उसी श्वास-क्षय से आयु-क्षय होता है। स्वाभाविक प्रतिभा से बन्दरों ने आरम्भ में ही इस बात का आविष्कार किया है। त्रेता युग के हनुमान आज भी जीवित हैं। अब वे लोग एकान्त में बैठकर उसी विशुद्ध-आदिमबुद्धि का अनुसरण कर रहे हैं। जमीन की तरफ मुंह करके सभी एकदम चुप हैं। समूचे द्वीप में केवल नाक से छींकने की आवाज निकल रही है, मुंह से कोई भी शब्द नहीं निकलता।"

"परस्पर बात कैसे समझी जाती है?"

"आश्चर्यजनक इशारे की भाषा निकली है। कभी लोढ़े को चलाने के ढङ्ग से, कभी पङ्खा झलने की चाल से, कभी आंधी में हिलते हुए सुपारी-वृक्ष की तरह दायें, बायें, ऊपर, नीचे सिर हिला

कर, वक्र होकर, झुक कर काम चलाया जाता है। यहाँ तक कि उस भाषा के साथ भौंहें टेढ़ी करके, आँखों को मींच कर कविता का भी काम चलता है। यह देखा गया है, दर्शकों की आँखें इस दृश्य से रोने लगती हैं नस्म की जगह बन्द हो जाती हैं।"

"तुम्हारी दोहाई, मुझे कुछ रुपये उधार दो। उस हुँआऊँ द्वीप में जाना पड़ेगा। ऐसी नयी मजेदार बात—"

नयी और पुरानी कहाँ हुई ? छींकते-छींकते बस्ती एकदम खाली होती जा रही है। हरे रङ्ग का वस्त्र ढेरों में पड़ा हुआ है। व्यवहार करने योग्य एक भी नाक बची नहीं है।

"यह बात आदि से अन्त तक तुमने बना कर कही है। विज्ञान के मजाक के लिए भी यह अत्युक्ति-सी प्रतीत होती है। तुम इस 'हुँआऊँ' द्वीप का इतिहास बना कर पूपे दीदी को आश्चर्य में डाल देना चाहते हो, तुमने निश्चय किया था कि अपने इस अभागे 'वह' नामधारी को ही बना कर समूचे द्वीप को छींकने को बाध्य कर मार डालेगे। तुम वर्णन करोगे कि मैं सिर हिला-हिला कर घटोत्कच-वध कथा कैसे रच रहा हूँ। तुम शायद किसी बकैयाँ चलने वाली मनोहर सिर हिलाने वाली के साथ मेरा ब्याह कर दोगे। सिर हिलाने के मन्त्र से कन्या अपना अपना सिर बायीं ओर से दायीं ओर हिलावेगी और मैं हिलाऊँगा दायीं ओर से बायीं ओर। सप्तपदी भाँवरि चतुर्दशपदी भाँवरि हो उठेगी। अपने सेनेटहाल में सिर हिलाने की भाषा में जब वे लोग कतारों में परीक्षा देने के लिए बैठे रहेंगे, तभी उनके साथ मुझे भी तुम एक कोने में बैठा दोगे। मेरे ऊपर तुम्हारे मन में दया-मया नहीं है, मुझे

फेल कर दोगे। किन्तु उनके स्पोर्टिङ्ग क्लब में बकैयाँ-रेस में तुम मुझे ही फर्स्ट-प्राइज दिलवा दोगे। मैं कहे देता हूँ, तुम यह मत सोचना कि पूपे दीदी को इस तरह हंसा सकोगे।"

"बहुत बकवाद मत करो। चाणक्य पण्डित ने व्यक्ति विशेष की आयु-वृद्धि के लिए कहा है—"

"तावच्च वांचते मूर्ख यावत् न बकबकन्यते।"

"तुमको संस्कृत की शिक्षा कुछ मिली थी?"

"जितनी मिली थी, उसका प्रायः डेढ़-गुना भाग भूल ही गया हूँ। नवीन चाणक्य ने जगत् के हित के लिए उपदेश दिया है उसे भी जान लेना तुम्हारे लिए आवश्यक है। दादा, छन्द-बद्ध ही लिखा गया है। तब साँस लेकर बच जाता हूँ। 'जब पण्डित चुपायते।"

"मैं जा रहा हूँ, मेरा अन्तिम परामर्श यही है कि वैज्ञानिक रसिकता छोड़ कर जितना भी लड़कपन हो सके करते रहो।"

\+ \+ \+

यह कहानी पूपे दीदी को बिलकुल ही अच्छी नहीं लगी। ललाट सिकोड़ कर कहा—"क्या ऐसा भी होता है? नस्म लेने से पेट भर सकता है?"

मैंने कहा—"भरता है, प्रारम्भ में पेट को ही तो हटा दिया गया है।"

पूपू दीदी ने आश्वस्त होकर कहा—"अच्छा ऐसी बात है।"

अन्त में कोई बात न कहने की बात सुन कर वह हिचक गयी। उसने प्रश्न किया—"कोई बात न कह कर जीवन-रक्षा हो सकती है?"

मैंने कहा—"उनके सबसे बड़े पण्डित ने भोज-पत्र पर लिखा

कर समग्र द्वीप में प्रचार किया है कि बातें कह कर ही मनुष्य मरता है। संख्या-गणना द्वारा उन्होंने प्रमाणित कर दिया है कि जो लोग बातें कहते थे, वे सभी मर गये हैं।"

हठात् पूपे दीदी ने प्रश्न किया—"अच्छा गूंगे कैसे मरते हैं?"

मैंने कहा—"वे बातें कहने से नहीं मरते। उनमें से कुछ तो पेट के रोग से मरते हैं, कुछ सर्दी-खांसी से।

सुन कर पूपे दीदी समझ गयीं कि यह बात युक्ति संगत है।

"अच्छा, दादा जी, तुम्हारा मत क्या है।"

मैंने कहा—"कुछ लोग मरते हैं, बातें कह कर, कुछ लोग मरते हैं न कह कर।"

"अच्छा, तुम क्या चाहते हो?"

"मैं सोच रहा हूँ कि हुँहाऊँ द्वीप में जाकर बसूँगा, जम्बू द्विप में बोलते बोलते जान जा रही है। अब मुझसे यह कष्ट सहा नहीं जाता।



३

हमारे 'वह' ने शृंगाल-सुधार-समिति की एक रिपोर्ट भेजी है। पूषू दीदी के यहाँ होने वाली बैठक में आज वह रिपोर्ट पढ़ी जायगी।

रिपोर्ट इस प्रकार है—

"सन्ध्या के समय मैदान में बैठा हुआ हवा खा रहा था कि उसी समय सियार ने आकर कहा—'दादा, तुम तो अपने ही बाल-बच्चों को मनुष्य बनाने में लगे रहते हो, मैंने क्या दोष किया है?"

मैंने पूछा—'मुझे क्या करना पड़ेगा, सुनूँ तो।'

सियार बोला—'भले ही मैं पशु हूँ, इसी लिए क्या मेरा उद्धार न होगा। मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, तुम्हारे ही हाथ से मनुष्य बनूँगा।'

सुन कर मैंने सोचा, यह तो अवश्य ही अच्छा कार्य है।

मैंने पूछा—'तुमने ऐसा विचार कैसे किया?'

उसने कहा—'यदि मैं मनुष्य बन जाऊँगा तो शृंगाल-समाज में मेरा नाम होगा। वे लोग मेरी पूजा करने लगेंगे।,

मैंने कहा—यह तो अच्छी बात है।

मित्रों को खबर दी गयी। वे बहुत प्रसन्न हो उठे। बोले—'यह तो अच्छा काम है। इससे संसार का उपकार होगा। हममें से कुछ लोगों ने एक सभा कायम किये हैं। उसका नाम रक्खा गया है। शृगाल-सुधा समिति।"

हमारे मुहल्ले में बहुत दिनों का एक चण्डी मण्डप खाली पड़ा हुआ है। वहाँ प्रतिदिन रात के नौबजे जाने के बाद शृंगाल को मनुष्य बनाने का काम होने लगा।

मैंने पूछा—बेटा, तुमको तुम्हारी जाति बिरादरी के लोग किस नाम से पुकारते हैं।"

सियार बोला हौ हौ, हमने कहा—छिः छिः, यह तो चल नहीं सकता। मनुष्य बनने के लिए पहले नाम बदल देना पड़ेगा, उसके बाद—रूप आज से तुम्हारा नाम शिबूराम रहेगा।'

उसने कहा—'ठीक है।' किन्तु चेहरा देखने से यही समझ में आया कि उसको 'हौ हौ' नाम जितना मधुर लगता है शिबूराम वैसा नहीं लग रहा है। उपाय दूसरा नहीं है, क्यों कि मनुष्य बनना ही है। पहला काम उसका दोनों पैरों पर खड़ा करने का हुआ। बहुत दिन लग गये। बड़े ही कष्ट से हिलाता-डोलाता चलता रहा, जब तक गिर पड़ता है। शरीर को किसी तरह खड़ा करने में छः महीने बीत गये। उसके पंजों को छिपा रखने के लिए जूता-मोजा-दस्ताना पहनाये गये।

अन्त में हमारे सभापति गौर गोसायीं ने कहा—'इस बार आईने में अपने द्विपदी छन्द की मूर्ति देख लो, पसन्द होती है या नहीं।'

शिबूराम आईना के सामने खड़ा हो रहा घूम फिर कर गरदन

हिलाना हुआ बड़ी देर तक देखता रहा। अन्त में बोला—'गोसाईं जी, तुम्हारे साथ चेहरे का मेल तो नहीं हो रहा है।'

गोसाईं बोले—'शिव, सीधा होने से ही क्या हुआ। मनुष्य बनना इतना सीधा काम नहीं है। पूछता हूँ, वह—पूछ कहां चली जायगी, तुम क्या उसकी ममता छोड़ सकते हो?

यह बात सुनते ही शिवूराम का मुँह सूख गया। सियारों के दस बीस गाँवों में उसके पूछ की प्रसिद्धि थी।

साधारण सियारों ने उसका नाम रक्खा था "अच्छी पूँछ वाला" जो लोग सियार-संस्कृति के जानकार थे वे उसी भाषा में उसे "सुलोम लांगूल-धारी" कहा करते थे। सोचने में उसके दो दिन बीत गये। तीन रातों को उसे नींद ही नहीं आयी। अन्त में वृहस्पतिवार को उसने आकर कहा—"मैं राजी हूँ।"

भूरे रंग की झाड़दार पूछ काट डाली गयी, एक दम जड़ से उड़ा दी गयी।

सभी सदस्य बोल उठे—"अहा? पशु की यह कैसी मुक्ति है। पूँछ-बन्धन की ममता इतने दिनों के बाद इसकी कट ही गयी! धन्य है।"

उस दिन उसको भोजन में रूचि नहीं हुई। सारी रात वह उस कटी पूँछ का सपना देखता रहा।

दूसरे दिन शिवूराम सभा में हाजिर हुआ। गोसाईं जी ने पूछा—"क्यों जी शिवूराम, शरीर अब कुछ हलका मालूम हो रहा है?"

शिवूराम बोला—"हाँ सरकार, खूब ही हलका लग रहा है। किन्तु मन कहता है कि पूँछ-तो चली गयी। तो भी मनुष्य के साथ वर्ण भेद तो दूर नहीं हुआ।"

गोसाईं बोले—रंग को मिलाकर यदि सवर्ण बनना चाहते हो तो, सब रोएँ निकलवा दो। तीनू नाऊ बुलाया गया।

खूब धीरे धीरे छील छील कर रोयें निकालने में पाँच दिन लग गये। तब जो रूप फट उठा उसे देखकर सदस्य गण अवाक हो गये। किसी ने एक भी बात नहीं कही।

शिवूराम ने उद्विग्न हो कर कहा—"आप लोग कोई बात क्यों नहीं कहते?"

सदस्यों ने कहा—"हम अपनी कीर्ति देखकर अवाक् हो गये हैं।

शिवूराम को मन में शान्ति मिली। कटी पूँछ और छीले हुए रोयें का दुःख वह भूल गया।

सदस्यों ने दोनों नेत्र बन्द कर कहा—"शिवूराम अब नहीं। अब सभा समाप्त हो गयी।"

शिवूराम बोला—"अब मेरा काम होगा शृगाल, समाज को अवाक् करना।"

इधर शिवूराम की बूआ खेंकिनी रो-रोकर मृतवत् हो गयी। गाँव के मुखिया हुक्कुई के पास जाकर उसने कहा—आज एक साल से अधिक समय हो चला, मैं अपने ही हौ को क्यों नहीं देखती बाघ—मालू के हाथ में तो नहीं पड़ गया?

मुखिया बोला—"बाघ भालुओं से भय कैसा? भय तो मनुष्य-पशुओं से है। शायद उन के फन्दे में पड़ गया है।

खोज होने लगी। घूमते-घूमते बरमाण्डियरों का दल उस चण्डीमण्डप की बाँसवारी में आ पहुँचा। पुकार उठी—'हुआँ, हुआँ।

शिवूराम का हृदय छटपटा उठा—एक दम गला छोड़ कर उस एक-

तान मंत्र में शामिल होने की उसकी इच्छा हुई। बड़े कष्ट से रुका रहा।

दूसरे पहर को बाँसों की झाड़ियों में फिर पुकार उठ पड़ी—'हुआँ-हुआँ। इस बार शिवूराम के दबे गले से सलाह की तरह जरा आवाज उठी। फिर भी वह रुक गया।

तीसरे पहर को जब वे लोग फिर चिल्लाने लगे, तब शिवूराम चुप न रह सका। पुकार उठा—हुआँ, हुआँ। हुआँ,हुआँ।

हुक्कुई बोला—'वही तो हौ-हौ के गाने की आवाज सुन रहा हूँ। एक बार पुकारो तो।

पुकार उठी-—"हौ-हौ!"

सभापति बिछावन छोड़ कर आये और बोले—'शिवूराम।'

बाहर से फिर पुकार उठी—'हौ-हौ।'

गोसायीं जी ने फिर सतर्क कर दिया—'शिवूराम!'

तीसरी बार की बुलाहट से शिवूराम दौड़ कर ज्यों ही बाहर चला आया त्यों ही सियारों ने दौड़ लगा दी। हुक्काई, हैयो, हू हू प्रभृति बड़े-बड़े सियार वीर अपने-अपने बिलों में जा घुसे।

समस्त सियार-समाज स्तम्भित हो गया।

+ + +

उसके बाद छः महीने बीत गये हैं। शिवूराम सारीरात चिल्ला चिल्ला कर कहता फिरता है—मेरी पूँछ कहाँ है, मेरी पूँछ कहाँ है!'

गोसायीं के सोने के कमरे के चबूतरे पर बैठ कर ऊपर मुँह उठाये पहर-पहर पर चीखता हुआ बोल उठता है, मेरी पूँछ लौटा दो।

गोसायीं को दरवाजा खोलने का साहस नहीं होता--वह डरता है कि पागल सियार कहीं उसे काट न ले।

सियारकाटा बन में वहाँ शिवूराम का मकान है, वहाँ उसका जाना निषेध है। उसकी जाति—बिरादरी के लोग उसे दूर से देखते ही या तो भाग जाते हैं, या चीख कर काटने को दौड़ पड़ते हैं। टूटे-फूटे चण्डी मण्डप में ही वह रहता है, वहाँ दो उल्लुओं के अतिरिक्त कोई अन्य प्राणी नहीं रहता खाँदू, गोबर, बैंची, टेड़ो आदि बड़-बड़े प्रसिद्ध बालक भी भूत के डर से वहाँ के जंगल से फल तोड़ लाने के लिए नहीं जाते।

सियारी भाषा में सियार ने एक कविता लिखी है। वह इस तरह है—

अरी पूँछ, खोयी पूछ तू है कहाँ।
छाती मेरी फट रही, बोलूँ हुआँहुआँ।

पूपे बोल उठी—'यह तो अन्याय हुआ भारी अन्याय। अच्छा दादा जी, उसकी मौसी भी उसे अपने घर में न रखेगी?'

मैंने कहा—'तुम कोई चिन्ता मत करो। उनके शरीर के रोयें उग जाने दो, तब उसे वह पहचान लेगी।'

'किन्तु उसकी पूँछ?'

सम्भवतः लांगूलाद्य कृत कविराज जी के दूकान पर मिलेगा। मैं पता लगाऊँगा।'

'वह' मुझे आड़ में ले गया बोला—'नाराज मत होना दादा, उचित बात कहूँगा—तुम्हारा भी सुधार होना आवश्यक हो गया है।'

'बे अदब कहाँ का, मेरा सुधार कैसा?'

'तुम्हारे उस बुढ़ापे का सुधारा उम्र तो कम नहीं कुछ, तो, भी लड़कपन में तुम पक्के न हो सके।

'इसका प्रमाण तुमको कैसे मिला।'

तुमने जो रिपोर्ट पढ़ कर सुनाई है? वह तो आदि से अन्त तक

व्यंग्य है, बूढ़ी उम्र को चपलाकी है। तुमने देखा नहीं कि पूपू दीदी क मुँह कैसा गम्भीर हो गया है? शायद उनके रोंगटे खड़े हो उठे थे। सोच रही थी शायद रोंआँ छिला सियार इसी कारण नालिश करने के लिए उसके पास आता ही होगा। यदि बुद्धि की मात्रा जरा कम न कर सकोगे तो कहानी सुनाना छोड़ दो।

उसको कम करना मेरे लिए कठिन है। तुम समझोगे कैसे, तुमको तो चेष्टा ही नहीं करनी पड़ती। विधाता तुम्हारे सहाय हैं।

दादा, क्रोध तो जरूर कर रहे हो किन्तु मैं कहता हूँ, बुद्धि की आँच से तुम्हारा रस सूखता जा रहा है। तुम सोचते हो कि मौज उड़ा रहे हो, किन्तु तुम्हारा मजाक शरीर को छू लेता है तो काँटे की तरह चुभता है। इसके पहले मैं तुमको कितनी ही बार सावधान कर चुका हूँ कि हँसाने की चेष्टा में परलोक मत बिगाड़ देना। पूँछ कटा सियार की बात सुनकर पूपू दीदी की आँखों में आँसू भर आये थे तुमने शायद नहीं देखा कहो तो मैं आज ही उसको जरा हँसा दूँ—विशुद्ध हँसी, उसमें बुद्धि की मिलावट न रहेगी।

'लिखी सामग्री क्या तैयार है?,

है। नाटकी चाल का वार्तालाप है। हमारे मुहल्ले के ऊधो, गोबरा और पंचू परस्पर वार्तालाप कर रहे हैं। उन सभी लोगों को दीदी पहचानती है

ठीक है। देखा जायगा।





ऊधो—क्या रे, कुछ पता चला?

गोबरा—अरे भाई, तुम्हारी बात सुन कर आज एक महीने से बन जंगल में घूमते-घूमते हड्डी मिट्टी हो गयी, चोटी तक भी दिखाई नहीं पड़ी।

पंचू—किसका पता लग रहा है रे?

गोबरा—पेड़ूबाबा का।

पंचू—पेड़ूबाबा? वह कौन है रे?

ऊधो—तू उसे नहीं जानता? दुनियाँ भर के लोग उसे जानते हैं।

पंचू—अच्छा, पेड़ूबाबा के बारे में मुझे बताओ, सुनना चाहता हूँ।

ऊधो—बाबा जिस पेड़ पर चढ़ जायँगे, वही—हो जायगा कल्पवृक्ष। पेड़ के नीचे खड़ा हो कर हाथ पसार कर तू जो भी माँगेगा, वही तुझे मिल जायगा रे।

पंचू—यह खबर तुझे किससे मिली है।

ऊधो—धोकड़ गाँव के भेकूसरदार से । उस दिन बाबा गूलर वृक्षपर चढ़कर पैर हिला रहे थे । भेकू जानता नहीं था, पेड़ के नीचे से जा रहा था । उसके सिर पर एक हाँड़ी जूसी थी, पीने का तमाखू तैयार करने के लिए । बाबा के पैरों से टकरा कर हाँड़ी लुढ़क पड़ी । जूसी से उसका मुँह और आँखें बन्द हो गयी । बाबा दयालु—थे ही, बोले—भेकू, अपने मन की कामना खोल कर सुनादे । भेकू, मूर्ख ही था । बोला—बाबा एक—अंगौछा दो, मुँह पोछ डालूँ । कहते देर ही न लगी कि पेड़ से एक अंगौछा गिर पड़ा । आँख-मुँह धोकर जब वह ऊपर ताकने लगा तो वहाँ कोई भी नहीं था । जो कुछ माँगेगा एक बार । उसके बाद बस् । फिर रो-रोकर आकाश फाड़ डालने से भी फिर कहीं कोई आहट न मिलेगी ।

पंचू—हाय रे हाय! शाला नहीं, दुशाला भी नहीं, केवल एक अंगौछा ! भेकू में बुद्धि—भी कितनी हो सकती है !

ऊधो—भले ही ऐसा हो गया हो । उस अंगौछे से ही उसका काम अच्छी तरह चल रहा है—देखता नहीं है ? रथतले के पास कितना बड़ा ओसारदार मकान बनवा लिया है । अंगौछा बाबा का तो है ।

पंचू—कैसे हो गया । जादू है क्या !

ऊधो—होंदलापाड़ा के मेले में उस दिन भेकू बाबा का अंगौछा पसार कर बैठ गया । हजारों की संख्या में लोग आ जुटे ! बाबा के नाम से रुपया, अठन्नी, चौवन्नी, आलू-मूली चारों ओर से अंगौछे पर गिरने लगा । कितनी ही स्त्रियों ने आकर कहा—ऐ भेकू दादा, मेरे लड़के के माथे पर बाबा का अंगौछा जरा लगा दे, वह आब तीन महीने से ज्वर से भोग रहा है । इसके लिए नियम यह है कि नैवेद्य चाहिये—सवारुपया, पाँच सुपारियां, पाँच छटांक चावल, पाँच छटांक घी ।

पंचू—नैवेद्य तो चढ़ा रहे हैं, फल भी कुछ पा रहे हैं?

ऊधो—जरूर पा रहे हैं। गाजन पाल लगातार पन्द्रह दिनों से अंगौछे पर ध्यान लगाता रहा है। उसके बाद उसने अंगौछे के कोने में रस्सी लगाकर एक खस्सी भी उसने बाँध दिया है। उस खस्सी की चिल्लाहट से चारों ओर से लोग आकर जमा हो गये। क्या कहूँ भाई, ग्यारह महीने बाद ही गाजन को नोकरी मिल गयी। हमारे राजभवन के कोतवाल के घर भाँग पीसता है, उसकी दाढ़ी कमा देता है।

पंचू—तू क्या सच बोल रहा है?

ऊधो—सच नहीं तो क्या। गाजन तो मेरे ममेरे भाई का नाते में भाई लगता है।

पंचू—अच्छा भाई ऊधो। तू ने अंगौछा देखा है?

ऊधो—जरूर देखा है। हट्टूगंज के करघे पर डेढ़ गज के जो अंगौछे बुने जाते हैं, उनकी किनारी लाल रंग की होती है, भीतर का हिस्सा चम्पे के रंग का, एक दम वही है।

पंचू—यह तू क्या कहता है? वही अंगौछा पेड़ के ऊपर से कैसे गिरा।

ऊधो—यही तो मजा है। बाबा की यह दया है।

पंचू—चल भाई, चल परसों से हम भी पता लगावें। किन्तु पहचानेंगे कैसे!

ऊधो—यही तो मुश्किल है। किसी ने तो उनको देखा नहीं है।

पंचू—तो फिर उपाय ही क्या है?

ऊधो—मैं तो बाजार में घाट पर जिसको ही देखता रहा, उससे ही हाथ जोड़ कर पूछता रहा कृपापूर्वक बता दो, क्या तुम्हीं पेट्टू बाबा हो?

सुनकर वे मारने दौड़ते थे । एक ने तो मेरे माथे पर हुक्के का पानी ही डाल दिया ।

गोबरा—डालने दे ! मैं छोड़ नहीं सकता। पता लगा ही लूँगा जो भाग्य में लिखा होगा ।

पञ्चू—भेकू कहता है, पेड़ पर चढ़ने से ही बाबा का चेहरा पहचान में आता है, जब वे नीचे रहते हैं, पहचान का कोई उपाय ही नहीं रहता ।

ऊधो—पेड़ पर चढ़ा-चढ़ा कर मनुष्यों की परख कैसे करूंगा, भाई ! मैंने एक युक्ति सोच ली है, मेरा आमड़ा पेड़ आमड़ों से लद गया है, जिसको देखता हूँ, उसी से कहता हूँ, आमड़ा तोड़ लो—पेड़ प्रायः खाली हो चला है, कितनी ही डालियाँ टूट गयीं हैं ।

पञ्चू—अब देर करना ठीक नहीं है रे, चल । यदि भाग्य का जोर रहेगा तो अवश्य ही दर्शन होगा । एक बार गला फाड़ कर पुकार न भाई !

पेड़ू बाबा, ए बाबा, दयाल बाबा, जङ्गल में यदि कहीं छिपे हो तो एक बार हम अभागों को दर्शन दो ।

गोबरा—अये हो गया रे, दया हो गयी शायद ।

पञ्चू—कहाँ रे कहाँ ।

गोबरा—यही तो 'चालता' पेड़ पर ।

पञ्चू—क्या रे 'चालता' पेड़ पर क्या है । मुझे तो कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता ।

गोबरा—वही तो हिल रहा है ।

पञ्चू—क्या हिल रहा है । वह तो पूँछ है रे ।

ऊधो—तेरी यह बुद्धि कैसी है गोबरा। वह तो बाबा की पूँछ नहीं है, वह तो बन्दर की पूँछ है। दिखता नहीं है कि मुँह बना रहा है।

गोबरा—घोर कलिकाल है। बाबा ने यह कपि-रूप धारण किया है हमें भुलावे में डालने के लिए।

पञ्चू—मैं भूल नहीं सकता बाबा! यह काला मुंह दिखा कर भुलावे में नहीं डाल सकते। जितना हो सके मुंह बनाते रहो, मैं डिग नहीं सकता, तुम्हारी इस श्रीपूँछ की शरण लेता हूँ।

गोबरा—अरे बाबा ने तो लम्बी कुदान से भागना शुरू कर दिया है।

पञ्चू—कहाँ भाग जायगा। हमारी भक्ति दौड़ के साथ वह कैसे पार पा सकेगा।

गोबरा—वही तो बेल-वृक्ष की डाल पर जा बैठा है।

ऊधो—चढ़ जा न पेड़ पर।

पञ्चू—अरे, तू चढ़ जा न।

ऊधो—अरे, तू चढ़ जा न।

पञ्चू—इतनी ऊंचाई पर मैं चढ़ नहीं सकता। बाबा दया करो, उतर आओ।

ऊधो—बाबा, तुम्हारी वही श्रीपूंछ गले में डाल कर अन्तिम समय में आँखें मूंद सकूं, यही आशीर्वाद मुझे दो।

+ + +

अजी कम बुद्धि वाले। हंसा सके?

नहीं। जो मनुष्य सभी बातों पर बिना विचार के ही विश्वास कर सकता है उसको हँसाना सहज नहीं है।

यह भय लग रहा है कि पूपे दीदी मुझे कहीं बाबा का पता

लगाने के लिए भेज न दे। चेहरा देखने से मुझे भी ऐसा मालूम हो रहा है। पेड़ बाबा की तरफ उसका खिंचाव हो गया है। अच्छा कल परीक्षा कर के देखूंगा विश्वास न करा कर भी हँसाया जा सकता है या नहीं।

थोड़ी देर बाद पूपे ने आकर कहा—अच्छा दादा तुम रहते तो पेड़ बाबा से अपने लिए क्या मांगते?

मैंने कहा—पूपे दीदी के लिए एक ऐसी कलम मांग लेता, जिससे लिखने से गणित का प्रश्न हल करने में एक भी भूल न होती।

पूपे दीदी ताली बजा कर बोल उठी—वह कैसी मजेदार बात होती।

गणित में इस बार दीदी को एक सौ में साढ़े तेरह नम्बर मिले थे।



५

सपना देख रहा हूँ, या जाग रहा हूँ बता नहीं सकता। यह भी नहीं जानता कि रात कितनी बीत चुकी है। कमरे में अन्धेरा छाया हुआ है। लालटेन है बरामदे में, दरवाजे के बाहर। एक छिपकली कीड़े के लोभ में चारो तरफ चक्कर काट रही है, मानों गया में पिण्डदान न मिलने से प्रेत चक्कर लगा रहा हो।

वह आकर पुकार उठा—दादा सो रहे हो क्या? यह कह कर वह कमरे में घुस पड़ा। काले कम्बल से उसका सारा शरीर ढका हुआ था।

मैंने पूछा—"तुम्हारा यह वेश आज कैसा है?"

वह बोला—"यह है मेरा वर-वेश।"

"वर वेश! समझा कर बता दो।"

"मैं कन्या देखने जा रहा हूँ।"

मैं नहीं जानता किस कारण मानो नींद से विभोर मेरी बुद्धि में यह विचार उठा कि ठीक ही हुआ है, यही वेश उचित है।

उत्साह देकर मैंने कहा—"तुमने यह अच्छा वेश बनाया है। तुम्हारी यह ओरिजिनलिटी देख कर मैं प्रसन्न हो गया। यह तो एकदम क्लासिकल साज है।"

"कैसे ?"

"भूतनाथ जब अपनी तपस्विनी कन्या को वर देने आये, वे तब हाथी का चमड़ा पहने हुए थे। तुम्हारे शरीर पर यह भालू का चमड़ा है। नारद जी देखते तो खुश होते।"

"दादा, तुम समझदार हो। इसीलिए इतनी रात को मैं तुम्हारे पास आया हूँ।"

"कितनी रात है बताओ तो ?"

"डेढ़ बजे होंगे, इससे अधिक नहीं।"

"कन्या क्या अभी देखने की जरूरत है।"

"हाँ, अभी।"

सुन कर ही मैं बोल उठा—'बहुत अच्छी बात है।'

"किस कारण बताओ तो।"

"किस कारण यह आइडिया तो अबतक मेरे दिमाग में नहीं आयी थी यही मैं सोचता रहा हूँ। आफिस के बड़े साहब का मुंह दिन में दोपहर को देखा जाता है और कन्या देखी जाती है आधी रात की अन्धियारी में !"

"दादा, तुम्हारे मुंह की बात अमृत-समान होती है। एक पौराणिक नजीर दे दो तो।"

"अमावस्या की घोर अन्धकार में महादेव अवाक् होकर महाकाली की तरफ ताक रहे हैं। इस बात को स्मरण करो।"

"अरे दादा तुम्हारी बात सुन कर मेरे शरीर के रोंगटे खड़े हो रहे हैं। जिसको सब्लाइम कहते हैं। तो फिर कोई बात नहीं है।"

"कन्या कौन है और कहाँ है?"

"मेरी भाभी जी की छोटी बहन है। वे उनके ही घर रहती हैं।"

"चेहरा क्या तुम्हारी भाभी जी से मेल खाता है?"

"जरूर मेल खाता है। सहोदरा तो हैं ही।"

"तो अन्धेरी रात की जरूरत है?"

"भाभी जी ने स्वयं ही कह दिया है, टार्च साथ न ले जाऊंगा।"

"भाभी जी का ठिकाना?"

"यहाँ से सत्ताइस मील की दूरी पर—चौचाकरना गाँव में उनगुण्ढ टोले में।"

"भोजन का ठिकाना तो है?"

"अवश्यक ही है।"

यह सुन कर किस मोह के कारण मेरा मन पुलकित हो गया, मैं कह नहीं सकता। लिवर के रोग से पिछले बारह वर्षों से भोगता आ रहा हूँ। भोज का नाम सुनते पित्त का कोप बढ़ जाता है।

मैंने पूछा—"खाने की समाग्री कैसी होगी?"

अत्यन्त उत्तेजित होकर वह बोल उठा—अति उत्तम, अति उत्तम, अति उत्तम। भाभीजी अमावट से बहुत अच्छी मीठी तरकारी बनाती हैं। और बेर के बीज को ओखरी में कूटकर उसके साथ तमाखू के पत्ते का जल मिलाकर चटनी तैयार करती हैं।"

यह कहने के साथ ही वह बिलायती चाल से नाचने लगा।

जीवन में किसी भी दिन मैं नाचा नहीं था। हठात् नाच का नशा

जाग उठा हम दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़ कर नाचने लगे। मुझे ख्याल हुआ कि मेरी क्षमता तो आश्चर्य जनक है। यदि यमुना दीदी देख लेती तो कहती, तुम जरूर नाचना जानते हो।

अन्त में मैं थक गया, हाफने लगा, धमाके से भूमि पर गिर पड़ा। मैंने कहा—"आहार की जो तालिका तुमने दी है, उसमें विशुद्ध विटामिन है। लिवर के लिये अमृत है। कन्या देखने जाओगे तो कन्या की जाँच भी तो होनी चाहिये।"

"वह तो एक बार पहले ही हो चुकी है। मैंने सोच लिया था कि मिलन होने के पहले ही मेल की परीक्षा हो जानी चाहिये। यह ठीक है कि नहीं बताओ।"

"ठीक तो जरूर है। किन्तु यह परीक्षा की विधि क्या है।

"पूछना चाहिये कि कविता के पद मिला सकती हो या नहीं। मैंने अपने यहाँ एक दूत "रंग मशाल" के सहकारी सम्पादक के पास भेजा था। उन्होंने एक पद लिख भेजा और कहा कि दूसरा पद मिलना चाहिये। छन्द-भंग न होने पावे। कविता का प्रथम पद यह है— 'सुन्दरी तुम काली बनी कैसी।' कन्या से पूछा गया, तो उसने उत्तर दिया—'अन्धे हो, दृष्टि ही नहीं ऐसी।'

सुन कर सहकारी सम्पादक से सहा नहीं गया। उसने लिख भेजा— ब्रह्मा ने लम्बे हाथ से, तुमको बनाया रात में। इच्छा ही थी उनकी जैसी।

"लम्बे हाथ से कहने का क्या मतलब है?"

"सुनता हूँ लड़की लम्बी है। तुमसे दो-तीन इंच बड़ी होगी। यह सुन कर ही तो मेरा उत्साह इतना बढ़ गया है।"

"तुम यह क्या कहते हो ?"

"एक लड़की से ब्याह करने से और आधी वसुद में मिलेगी।"

"यह बात मेरी समझ में नहीं आयी।"

"जो भी हो दादा, सहकारी सम्पादक से अपनी हार मान कर उसने स्वीकृति देदी है।"

"कैसे ?"

"मछली के वल्कल का हार गूथ कर उनके गले में उसने पहना दी है, कहा है—यशसौरभ तुम्हारे साथ साथ घूमता फिरेगा।"

मैं उछल कर बोल उठा—"धन्य हो मैं देख रहा हूँ कि एक असाधारण के साथ दूसरे असाधारण का मिलन होगा। संसार में ऐसी घटना शायद कभी होती है। शुभ दिन की घड़ी देखने की जरूरत ही क्या है ?"

"किन्तु लड़की की प्रतिज्ञा है कि उसको जो हरा सकेगा उससे ही वह ब्याह करेगी।"

"सौन्दर्य में ?"

"नहीं, बातों को मिलाने में, यदि—मैं अच्छी तरह न मिला सकूँ तो वह अपने को तीलांजलि दे देगी।"

"तुम यह कर सकोगे तो ?"

"निश्चय कर सकूँगा।"

"लाइन कैसी बनी है सुनूँ तो।"

"कहूँगा, चार लाइन में मेरा चरित्र-वर्णन करो। स्तव द्वारा मुझे खुश कर दो। मेल उच्चकोटि का होना चाहिए।"

"कन्या देखने का यदि पेटेण्ट लिया जा सकता, तो तुम ले सकते थे। वर के स्तव से ही शुरू होता है। अति उत्तम, उमा इसी उपाय से बीत गयी थीं।"

"प्रथम लाइन उसे बता देने की बरूरत होगी। नहीं तो वह मेरे चरित्र का थाह न पावेगी। वर्णन की खास बात यह है—"

तुम एक अदभुत प्राणी हो दम पूरे तुकबन्दी का दावा करने से शायद लड़की सिर पर हाथ रख कर सोच में पड़ जायगी। उसे हार माननी ही पड़ेगी। अच्छा दादा, तुम्हीं दूसरी लाइन जोड़ दो न।

मैंने कहा—कंधे पर तुम्हारे चढ़ा है बद् भूत।

"एकसेलेण्ट! किन्तु दो लाइन और न होने से तो कविता की पूर्ति नहीं होती। मैं कहता हूँ कन्या तो कन्या ही है, कन्या के बाप में सामर्थ्य नहीं है कि इसका मेल निकाल सके। दादा, तुम्हारे दिमाग में कुछ आ रहा है? भाषा में दो या कुभाषा में ही दो।"

"बिलकुल ही नही।"

"तो अब सुनो—"

छत से कूद पड़ो, कीचड़ देखो टूट पड़ो,
जब तब करो यद्भुत तद्भुत।

"यह फिर क्या! यह किस देश की बोली है?"

"देव भाषा संस्कृत है—किम्भूत शब्दों का पर्याय है।"

"यद्भूत तद्भूत का अर्थ क्या हुआ?"

"उसका अर्थ है, जैसी ही खुशी हो वही। विद्वान गण इसे आधुनिक भाषा का बरदान कहते हैं।"

इस मनुष्य पर मेरी भक्ति की तरंग उफना उठी। जान पड़ा कि आसाधारण प्रतिभा है, उसकी पीठपर थपकी लगा कर मैंने कहा—"मुझे तुमने स्तम्भित कर दिया।"

वह बोला—साम्भित होने से काम कैसे चलेगा। चलना पड़ेगा। लग्न बीत रहा है। तीव्र वेग ववकरण बीत जायगा, फिर

तो तैतिलकरण आ जायगा, वैष्कुम्भ-योग, उसके बाद ही हर्षर विष्टिकरण, अन्तिम रात्रि में असृक्-योग, घनिष्ठा नक्षत्र आ जायगा—गोस्वामी जी के मत से व्यतीपात-योग, बालवकरण परिघ-योग में जब गरकरण आ जायगा तब तो विपद ही समझिये—विवाह सदृश शुभ कार्य के लिए गरकरण के समान कोई भारी विघ्न हो ही नहीं सकता। इस सप्ताह में एक दिन भी सिद्धि-योग, ब्रह्म-योग, इन्द्र-योग शिव-योग न मिलेगा। बरीयान-योग की कुछ आशा है, जब कि पुनर्वसुनक्षत्र की दृष्टि पड़ेगी।"

"जरूरत नहीं है, जरूरत नहीं है, अभी निकल चलें तो ठीक होगा। पुत्त्‌लाल को बुलाओ, मोटर ले आवे। अबतक वह चर्खा चलाने में व्यस्त होगा। चरखा चलाते-चलाते वह सो सकता है, मोटर चलाते-चलाते उसकी यह दशा हुई है।

हम गाड़ी पर सवार हो गये।

जङ्गल के बीच से जा रहे थे, घोर अन्धकार छाया था, पोखरी के पास 'आसु सेवड़ा' की झाड़ियाँ थीं। अकस्मात उसमें से लोमड़ी बोल उठी। उस समय रात के तीन बजे होंगे। ज्योंही उसने बोलना शुरू किया पुत्त्‌लाल चौंक उठा और मोटर समेत गले भर जल में जा गिरा। इधर उसकी पीठ के कपड़े के भीतर मेढक घुस गया था और उछल-कूद मचा रहा था और पुत्त्‌लाल की चिल्लाहट का क्या कहूँ। मैंने उसको सान्त्वना देकर कहा—पुत्त्‌लाल, तेरी पीठ में वात रोग हो गया है, मेंढक को खूब जोर से कूदने दे, बिना पैसे की ऐसी अच्छी मालिश तुझे न मिलेगा।

गाड़ी की छत पर खड़ा होकर मैं पुकारने लगा—बनमाली,

बनमाली। स्टूपिड की कोई आहट नहीं मिली। स्पष्ट ही बात समझ में आ गया कि उस समय बोलपुर स्टेशन के प्लेटफार्म पर चादर ओढ़े नाक से आवाज करता हुआ सो रहा था था। बड़ा ही क्रोध हुआ। इच्छा हुई की उसकी नाक के भीतर फाउण्टेनपेन डाल कर उसे छींकने को बाध्य कर आऊं। इधर कीचड़ से घुले जल से मेरे वस्त्र भींग चुके थे। बालों को कंघी से झाड़ कर साफ किये बिना उसके भाभी जी के पास कैसे जाऊं। गड़बड़ी देख कर पोखरी के किनारे बतखों ने बोलना शुरू किया। एक ही उछाल में मैं उन लोगों के बीच जा घुसा। उनमें से एक को पकड़ कर उसके दायें पङ्ख से घिस घिस कर अपने बालों को मैंने ठीक कर लिया। पुत्तूलाल बोला—तुमने ठीक ही कहा है दादा जी। मेंढक के कुदान से सचमुच आराम मालूम हो रहा है। नींद आ रही है।

उसकी भाभी के घर हम पहुँच गये गये। भूख की जोर से कन्या देखने के बारे में मैं भूल ही गया था। भाभी जी से मैंने पूछा—मेरे साथ वह था, वह दिखाई क्यों नहीं पड़ रहा है?

दुपट्टे के तीन हाथ लम्बे घूंघट के भीतर से महीन सुर से भाभी जी बोलीं—"वह कन्या ढूंढ़ने गया है।"

"किस चूल्हे में?"

"मजा पोखरी के किनारे बाँसों की झाड़ी।"

"यहाँ से कितनी दूर होगी?"

"तीन पहर का रास्ता है।"

"बहुत दूर तो नहीं है। किन्तु मुझे भूख लगी है, अपनी वह चटनी निकालो तो।"

भाभीजी ने अनुनासिक स्वर से कहा—"हाय रे मेरा दुर्भाग्य इस

पिछले मंगलवार के पूर्व के मंगलवार को फटे फुटबाल में भर कर सब को मैंने बूजू दीदी के घर भेज दिया। वह उसे खाना पसन्द करती है। चने के सत्तू में सरसों का तेल और लाल मिर्च मिलाकर खाती है।"

"मुँह सूख गया।" मैंने कहा, "हम क्या खायेंगे ?"

भाभी जी ने कहा—"सूखी चिंगड़ी मछली का मुरब्बा भूसी में मिला कर बना है। वही है, तुम लोग खालो, नहीं तो पित्त बन जायगा।"

कुछ मैंने खाया, बहुत बाकी रह गया। फुतूलाल से मैंने पूछा—"खाओगे ?"

वह बोला—"हाँड़ी दे दो। घर जाकर सन्ध्या—पूजा करके खाऊँगा।"

मैं घर लौट आया। चप्पल भीग जाने से सारा शरीर कीचड़ से लथ-पथ हो गया था।

बनमाली को बुलाकर मैंने कहा—"अरे बन्दर, तू क्या कर रहा था।"

वह अवाक् हो कर रोते-रोते बोला—"बिछू ने काट लिया था, इस लिये सो रहा था।"

यह कह कर ही सोने चला गया।

उसी समय एक गुंडों सा दिखाई पड़ने वाला पुरुष एक दम कमरे में आ गया। बहुत लम्बा था, उसकी गरदन मोटी थी, मोटे पीपे की तरह उसकी गरदन भी, शरीर का रंग बनमाली की तरह काला था, बाल घूँघरदार थे, मूँछ इधर-उधर बिखरी हुई थी, दोनों आँखें लाल थीं, शरीर में छींट की मिरजई थी, कमर में लाल रंग की डोरियादार

लुंगी के ऊपर पीले रंग का तिकोना अंगोछा बँधा था। हाथ में पीतल की काँटेदार एक बाँस की लाठी थी, गले की आवाज मानो गदाइ बाबू की मोटर के भोंपे की तरह थी। अकस्मात वह साढ़े तीन मन वजन के गले से पुकार उठा—"बाबू जी।"

मैं चौंक उठा। कलम के खरोच से कुछ कागज फट गया।

मैंने कहा—"क्या हो गया है? तुम कौन हो?"

वह बोला—"मेरा नाम है पल्लाराम। मैं दीदी के घर से आ रहा हूँ, जान लेना चाहता हूँ कि तुम लोगों का—"वह" कहाँ चला गया।

मैंने कहा—"मैं क्या जानूँ?"

पल्लाराम आंखें तरेर कर बोला—"जरूर नहीं जानते! वहीं उसके एक पैर का जोड़ लगाया हुआ ऊनी मोजा कीचड़ समेत सूख कर गिलहरी की कटी हुई पूँछ की तरह तुम्हारी पुस्तकों के टाँड पर भूल रहा है, उसको छोड़कर वह कैसे कहीं चला जायगा?'

मैंने कहा—"नुकसान सहा न जायगा, जहाँ भी होगा अवश्य लौट आवेगा। किन्तु क्या हो गया है?"

पल्लाराम बोला—"परसों सन्ध्या के समय दीदी-जंगीलाट के घर गई थीं।"

मैंने कहा—"तो मैं क्या करूँ।"

पल्लाराम बोला—"तुम्हारे यहाँ कहीं वह छिपा हुआ है, उसे ढूँढ कर ले आओ।"

मैंने कहा—"वह यहाँ नहीं है, जाओ थाने में खबर दे दो।"

"निश्चय ही वह है।"

मैंने कहा—"तुमने तो अच्छी मुश्किल में मुझे डाल दिया! कहता हूं, नहीं है।"

"निश्चय है, निश्चय है, निश्चय है, कह कर पल्लाराम मेरी टेबिल पर दनादन अपनी बाँस की लाठी की मुट्ठी ठोंकने लगा, पड़ोस के मकान में एक पागल रहता था, वह सियार की बोली की नकल करके 'हुआँ हुआँ, चीतकार करने लगा। गांव के सभी कुत्ते चीख उठे। बनमाली मेरे लिये एक गिलास बेल का शरबत रख गया था। वह उलट गया, और फूट गया, बैंगनी रंग की स्याही के साथ मिलकर रेशमी चादर के ऊपर वह चला और मेरे जूते के भीतर जाकर जम गया। मैं चिल्लाने लगा—"बनमाली, बनमाली।"

बनमाली कमरे में घुसते ही पल्लाराम का चेहरा देखकर बाप रे, माई रे, कह कर चिल्लाते-चिल्लाते दौड़ भागा।

अकस्मात् मुझे बात याद पड़ गयी। मैंने कहा—"वह कन्या ढूढ़ने गया है।"

"कहाँ?"

"मजा पोखरी के किनारे बाँसों की झाड़ी में।"

"उसने कहा—वहाँ तो मेरा मकान है।"

"तब तो ठीक ही हुआ। तुमको लड़की है?"

"है।"

"अब तुम्हारी लड़की का बर मिल गया।"

"अभी नहीं कहा जा सकता कि मिल ही गया। यह डंडा लेकर गरदन पकड़ कर उसका ब्याह करूंगा। उसके बाद समझूँगा कि कन्या का भार दूर हो गया।"

"तो अब देर मत करो। कन्या देख लेने के बाद ही वर को देखना शायद सहज न होगा।"

उसने कहा—"बात तो ठीक है।"

कमरे के अन्दर एक फूटी बालटी थी। उसे झट से उसने उठा लिया। मैंने पूछा—"इसे लेकर क्या होगा।"

उसने कहा—कड़ी धूप है, टोपी की तरह पहनूँगा।"

वह तो चला गया। उस समय कौए बोलने लगे थे, ट्रामों की आवाज शुरू हो गयी थी। बिछावन से हड़बड़ कर उठते ही मैंने बनमाली को पुकारा। पूछा—"कमरे में कौन घुसा था।"

उसने आँखें रगड़कर कहा—"दीदी जी की बिल्ली—घुसी थी।"

यहाँ तक सुनकर पूपे दीदी ने हताश भाव से कहा—"तुमने तो कहा था। तुम निमंत्रण में खाने गये थे, उसके बाद तुम्हारे कमरे में पल्ला-राम आया था।

मैंने अपने को सम्हाल लिया। सब मिट्टी में मिल जाता है। अब से पल्लाराम को ही लेकर जैसे भी हो तत्पर हो जाना पड़ेगा। जब विधाता सपना तोड़ देते हैं, तब कोई शिकायत शोभा नहीं देती। हम तोड़ देते हैं तो बड़ा निष्ठुर कार्य होता है।

पूपे दीदी ने कहा—"दादा जी उन दोनों का विवाह हुआ या नहीं, यह तो तुमने कुछ भी नहीं बताया।"

"मैं समझ गया कि व्याह होना बहुत जरूरी है। मैंने कहा—"व्याह न होने से क्या जान बच सकती है।"

"उसके बाद तुम्हारे साथ उन लोगों की फिर मुलाकात हुई है?"

"जरूर हुई है। भोर में साढ़े चार बजे थे, रास्ते में गैसे बुझी नहीं थीं। मैंने देखा कि नयी बहू अपने वर को पकड़े चली जा रही हैं।"

"कहाँ?"

"नये बाजार में मानकचू खरीदने के लिये।"

"मानकचू !"

"हाँ, वर ने आपत्ति उठायी थी ।"

"क्यों ?"

उसने कहा था—"बहुत ही जरूरत हो तो कटहल खरीद कर ला सकता हूँ, मानकचू मैं न खरीद सकूँगा ।"

"उसके बाद—क्या हुआ ?"

उसे मानकचू कंधे पर ले आना पड़ा ।

टूपू खुश हो गयी । बोली—"खूब फल मिला ।"



६

हम सब बैठ कर चाय पी रहे थे। उसी समय "वह" आ गया।

मैंने पूछा—"कुछ कहना चाहते हो?"

वह बोला—"चाहता हूँ।"

"झट से कह डालो। मुझे इसी क्षण बाहर जाना है।"

"कहाँ?

"लाट साहब के घर।"

"लाट साहब तुमको बुलाते हैं?"

"नहीं, बुलाते नहीं हैं, बुलाते तो अच्छा करते।"

"अच्छा कैसा?"

"जान लेते कि—उन्हें जिन लोगों से खबर मिला करती है, उनसे भी मैं बढ़ कर खबर बनाने में उस्ताद हूँ। कोई भी रायबहादुर मेरे साथ होड़—में टिक नहीं सकता, यह बात तुम जानते हो।"

"जानता हूँ, किन्तु मेरे सम्बन्ध में तुम आज कल जो ही अच्छा लगता है वही कहते फिरते हो।"

असम्भव गल्पों की ही तो फरमाइस रहती है।

"रहने दो न असम्भव! उसका—भी तो एक बन्धन रहना चाहिए। इधर-उधर की असम्भव बातें वो कोई भी बना सकता है।"

"अपने असम्भव का एक नमूना दो।"

"अच्छा कहता हूँ, सुनो—"

+ + + +

स्मृतिरत्न पण्डित जी मोहनबगान की गोल कीपरी करते हुए कलकत्ता से एक-एक करके पाँच गोल खा गये। खाने से भूख नहीं मिटी, कय होने लगी, पेट सों-सों करने लगा। सामने ही अक्टलनी मोनू मेंट मिल गया। नीचे से उसे चाटने लगे, चाटते-चाटते एक-दम हटकर चले गये। बदरुद्दीन मियाँ सेनेट हाल में बैठ कर जूते सी रहा था। वह हाँ-हाँ करता हुआ दौड़ लगा कर चला आया बोला—आप शास्त्रज्ञ पण्डित ठहरे, इतनी बड़ी चीज को जूठा बना दिया।

'तोबा-तोबा' कह कर मोनूमेंट के ऊपर तीन बार थूक मियाँ साहब खबर देने के लिए स्टेट्समैन अखबार के दफ्तर में चला गया।

स्मृतिरत्न जी को अकस्मात होश हो गया कि उनका मुँह अशुद्ध हो गया है। वे म्युजियम के दरबान के पास चले गये, बोले—"पाण्डे जी, तुम भी ब्राह्मण हो, मैं भी ब्राह्मण हूँ, मेरा एक अनुरोध रखना पड़ेगा।"

पाण्डे जी दाढ़ी मरोड़ कर सलाम करके बोला—"कोमा भू पोतें भू सि भू प्ले?"

पण्डित जी ने जरा सोच कर कहा—बहुत ही कड़ा प्रश्न है,

सांख्यकारिका मिला कर देखूंगा तो कल जवाब दे जाऊँगा। इसके अतिरिक्त मेरा मुंह आज अशुद्ध है, मैंने मोनूमेंट चाटा है।

पाण्डे जी ने दियासलाई जला कर बर्मा-चुरुट जलाया, दो दम खींच कर बोला—"तो अभी आप पेत्रस्टार डिक्शनरी खोलिए, देखिये इसके क्या विधान है?"

स्मृतिरत्नजी बोले—"तब तो मुझे भाट पाड़ा जाना पड़ेगा। यह काम पीछे होगा, आपातत: पीतल से मढ़ा वह डण्डा मुझे चाहिये।"

पाण्डे बोला—"क्यों, क्या होगा, आँख में कोयले का कण पड़ गया है शायद?"

स्मृतिरत्नजी बोले—"तुमको यह खबर कैसे मिली। वह तो परसों पड़ गया था, मुझे दौड़ कर उल्टा डींगी में यकृत् विकृत के बड़े डाक्टर मैकार्टनी साहब के पास जाना पड़ा था। उन्होंने नारिकेल डांगा से कुल्हाड़ मंगा उसे साफ कर दिया।

पाण्डे बोला—"तो फिर डण्डे की क्या जरूरत है?"

पण्डित जी बोले—"दातून करना पड़ेगा।"

पाण्डे जी बोला—ओ: ऐसी बात है, मैं समझ रहा था कि नाक में काठी डालकर शायद छींकोगे, ऐसा होने से फिर गङ्गाजल से उसकी शुद्धि करनी पड़ती।"

× × + +

यहाँ तक कह कर गुड़गुड़ी अपने पास लेकर दो दम खींच कर वह बोला—"देखो दादा, इसी तरह तुम बना कर कहने का तरीका अपनाते हो, यह मानो अंगुली से न लिख कर गणेश जी के सूंड़ से लम्बी चाल से लिखना है। जिस बात को जिस रूप में जानता

हूँ उसको भिन्न रूप का बना देना। यह अत्यन्त सहज काम है। यदि तुम कहो कि लाट साहब ने तेली का व्यवसाय पकड़ कर बाग बाजार में शुटकी मछली की दूकान खोल दी है, तो ऐसे सस्ते मजाक से जो लोग हंस पड़ते हैं, उनकी उस हंसी का मूल्य ही क्या है।"

"तुम बिगड़ उठे हो मालूम होता है।"

"इसका कारण है। मेरे सम्बन्ध में उस दिन तुमने पूपू दीदी को जो ही मुंह से निकला वही कह डाला था। अतिशय बच्ची होने के कारण पूपू दीदी मुंह बाये सब सुन रही थी। किन्तु यदि अद्भुत् बात कहनी ही पड़े तो, उसमें कारीगरी रहनी चाहिये।"

"नहीं, कारीगरी नहीं थी। यदि तुम मुझे उसमें न लपेटते तो मैं चुप ही रहता। यदि तुम कहते कि अपने अतिथि को तुमने जिराफ की रसदार तरकारी खिला चुके हो, सरसों के डंठल के साथ तिमि मछली का भाजा, और पोलाव के साथ कीचड़ पड़ा हुआ था और उसके साथ ताल की जड़ की सूखी चड़चड़ी थी, तो उस हालत में मैं कहता कि वह बेकार बात हुई वैसा लिखना सहज है।"

"अच्छा, तुम रहते तो कैसा लिखते।"

"बताऊँ, नाराज तो न होगे? दादा! तुमसे मेरी करामात अधिक है, ऐसी बात नहीं, कम है इसीलिए सुविधा है। मैं इस तरह कहता—तसमनिया ताश खेलने का न्यौता था। वहाँ कोजूमाचुक मकान-मालिक थे और गृहिणी का नाम था श्रीमती हाचियेन्दानी कोरुङ्कना। उन लोगों की बड़ी लड़की का नाम था पामकुनी देवी, उन्होंने अपने हाथ से किएटी बाबू का मेरिङनाथू पकाया था, उसकी गन्ध सात मुहल्लों को पार कर जाती थी। उस गन्ध से सियार भी

दिन ही में निर्भय होकर चीत्कार करने लगते हैं, वे लोभ से या क्षोभ से किस कारण ऐसा करते हैं, मैं नहीं जानता। कौए जमीन पर अपने चोंच घुसेड़ कर जी-जान से लगातार तीन घण्टे तक पंख झाड़ते रहते हैं। यह हुई तरकारी की बात। और गगरियों में कांग-कुटो की सङ्ग-चानी भरी हुई थी। उस देश के पके-पके आंकसुटी फल के छिलकों के रस से भिगो कर बनी हुई। इसके साथ मिठाई थी इक्टीकाटो की *विक्टीमाई*, जो दौरे में भरी हुई थी। पहले उन लोगों का पालतू हाथी आया और उसने अपने पैरों से उनको रौंद डाला। उसके बाद उन लोगों के देश का सबसे बड़ा जानवर आया जो मनुष्य बैल और सिंह के मिश्रण से बना है, जिसे वे लोग गाएडी-सागड़ु कहते हैं, उसने अपना कांटेदार जीभ से उन्हें चाट-चाटकर कुछ-कुछ नरम बन दिया। उनके बाद तीन सौ मनुष्यों के पत्तलों के सामने दनादन इमानदिस्ता का शब्द उठने लगा। वह लोग कहते हैं कि यह भीषण शब्द सुनते ही उनकी जीभ से लार टपकने लगती है। दूर के मुहल्ले से सुन कर झुण्ड के झुण्ड भिखारी आने लगते हैं। खाते-खाते जिन के दांत टूट जाते हैं, वे लोग अपने उन टूटे हुए दांतों को मकान-मालिक को दान कर जाते हैं। उन टूटे दातों को वे बैंक में जमा करने के लिए भेज देते हैं, अपने लड़कों के लिये वसीयत नाम लिख जाते हैं। जिसको यहां जितने अधिक दांत जमा रहते हैं। उतना ही उनका नाम होता है। बहुत से लोग दूसरों के संचित दांत खरीद कर अपनी सम्पति कह कर चल देते हैं। इसको लेकर बड़े-बड़े मुकदमे चल रहे हैं, हजार दांत वाला पचास दांत वाले के घर अपनी लड़की का ब्याह नहीं करता। इसके लिये एक सामान्य पन्द्रह दांत वाला उनके यहां केटकू लडडू खाने गया था। खाते समय अकस्मात् सांस एक जाने से मर

गया। हजार दांत वाले के मुहल्ले में उसको जलाने के लिए आदमी ही नहीं मिले। उसे छिपे तौर से चौचङ्गी नदी में फेंककर बहा दिया गया। इसको लेकर नदी के दोनों किनारों के लोगों ने अपने हक का मुकदमा चला दिया था, प्रिवीकौंसिल तक लड़ाई चली थी।"

मैं हांफने लगा, बोला—"ठहरो, ठहरो किन्तु मैं पूछता हूँ कि तुम जो कहानी सुना गये, उसका विशेष गुण क्या है ?

"उसका गुण यह है, वह बेर के बीज से बनी चटनी नहीं है। जिसके बारे में कुछ भी जानकारी नहीं रहती उसको लेकर अतिशयोक्ति का शौक मिटाने से शिकायत का कोई कारण नहीं रहता। किन्तु, इसमें भी ऊँचे प्रकार की कोई हँसी है, यह मैं नहीं कहता। जो बात विश्वास करने के अतीत है, यदि उसे भी विश्वास योग्य बना सको तो उसी हालत में अद्भुत रस का गल्प तैयार होता है। निहायत बाजारू बच्चों को फुसलाने वाले अत्युक्त यदि रचते रहोगे तो, तुमको अपयश लगेगा। यही मैं कह रखता हूँ।"

मैंने कहा—"अब मैं इस तरह कहानी सुनाऊँगा कि पूपू दीदी का विश्वास भंग करने के लिए ओझा बुलाने—की जरूरत पड़ेगी।"

अच्छी बात है, किन्तु लाटसाहब के घर जाने की बात कहने से क्या अर्थ निकलता है।"

"यह निकलता है कि तुम्हारा विवाह हो जाने से ही मुझे छुट्टी मिलेगी। एक बार बैठ जाने पर तुम उठना नहीं चाहते, इसलिये 'तुम जाओ, यह अनुरोध जरा घुमा कर कहना पड़ा।"

"समझ गया, अच्छा अब मैं जाता हूँ।"

★

७

सरकस देख कर आ जाने के बाद से पूपू दीदी का मन मानो बाघ का डेरा हो उठा, बाघ के साथ और बाघ की मौसी के साथ मानो सदा उसकी बातचीत होती रहती है। जब हम में से कोई भी नहीं रहता, तभी उनकी मजलिस जमती है। मुझसे वह नाई की खबर पूछ रही थी। मैंने कहा—"नाई की क्या जरूरत है?"

पूपू ने कहा—"बाघ उसे बहुत परेशान कर रहा है। कोई उसकी मूँछ बहुत बढ़ गयी है। वह कटाना चाहता है।"

मैंने पूछा—"दाढ़ी कटाने का विचार उसके मन में कैसे उठ पड़ा।

पूपे बोली—"चाय पीने के बाद प्याली के नीचे जो थोड़ी सी बची रहती है, वही मैं बाघ को पीने के लिये देती हूँ। उस दिन जब वह चाय पीने के लिए आया तो उसने पाँचू बाबू को देख लिया। उसको विश्वास है कि मूँछ कटा लेने से उसका मुँह ठीक पाँचू बाबू की ही तरह दिखाई पड़ेगा।"

मैंने कहा—"उसका यह सोचना एकदम अनुचित नहीं है। किन्तु

जरा दिक्कत है। कहानी के प्रारम्भ में ही यदि वह नाई को समाप्त कर दे, तो कहानी समाप्त ही न होगा।"

यह सुनते ही पूपे की बुद्धि में यह सूझ प्रकट हुई। बोली—"जानते हो दादाजी? बाघ कभी नाई को नहीं खाते।"

मैंने कहा—"तुम यह क्या कहती हो। क्यों बताओ तो।"

"खाने से उनको पाप लगता है।"

"आः, तब तो कोई डर नहीं है। एक काम किया जायगा। चौरंगी पर अंग्रेज नाऊ की दूकान पर ले चलेंगे।"

पूपे ताली पीट कर बोल उठी—

"हाँ, हाँ यह तो खूब मजेदार बात होगी। वह अवश्य ही साहब का मांस न खायगा। घृणा करेगा।"

"खाने से गंगा स्नान करना पड़ेगा। खाने-पीने में बाघ बहुत छूआ-छूत का विचार रखता है। तुम यह बात कैसे जान गयी दीदी।"

पूपू खूब सयानी लड़की की तरह मुस्कुराकर बोली—"मैं सब जानती हूँ।"

"और मैं क्या नहीं जानता?"

"क्या जानते हो बताओ तो।"

"वे कभी केवट का मांस नहीं खाते। विशेषतः जो लोग गंगा के पश्चिम तट पर रहते हैं उनका। शास्त्र में निषेध है।"

"और जो लोग पूर्वी तट पर रहते हैं?"

"वे यदि केवट-मल्लाह हों, तो वह अति पवित्र मांस है। उस मांस को खाने का नियम बायें पंजे से नोच-नोचकर खाना है।"

"बायें पंजे से क्यों?"

"वही है शुद्ध रीति। उनके पण्डित लोग दायें पंजे को गन्दा कहते

है। एक बात तुम जान रक्खो दीदी, नाई को वे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। नाईनें तो स्त्रियों के पैरों में आलता लगाती हैं।"

"लगाने से क्या हुआ?"

"साधु प्रकृति के बाघों का कहना है कि आलता रक्त का सूचक है, परन्तु वह खरोंच कर, काट कर नोच कर चबा कर निकाला हुआ रक्त नहीं है, वह मिथ्याचार है। इस तरह के कपटाचरण की वे लोग निन्दा करते हैं। एक बार एक बाघ रंगरेज के घर में घुस गया था। वहाँ लाल रङ्ग गमले में था। उसे रक्त समझ कर उसमें अपना मुँह डाल दिया। वह पक्का रंग था। बाघ की दाढ़ी मूछ दोनों गाल, एक दम लाल हो गये। घोर जंगल में जहाँ बाघों के पुरोहितों का गाँव है। वहाँ पहुँचते ही उनके आचार्य शिरोमणि बोल उठे, यह कैसा काण्ड है! तुम्हारा समूचा मुँह लाल क्यों है! वह लज्जित हो कर झूठी बात बना कर बोला—गैंडा मार कर उसका खून पीकर आया हूँ। झूठी बात पकड़ी गयी। पण्डित जी बोले—नखों में तो रक्त का चिन्ह मैं नहीं देखता। फिर उसका मुँह सूँघ कर बोले—"मुँह में तो रक्त की गन्ध नहीं है।"

सब लोग बोल उठे—"छिः छिः यह तो रक्त भी नहीं है, पित्त भी नहीं है—मज्जा भी नहीं है—निश्चय ही मनुष्य के गाँव में जाकर यह—ऐसा रक्त पी आया है जो निरामिष रक्त—है, जो अपवित्र है। पंचायत की बैठक हुई बाघ विशारद-महाशय हुँकार देकर बोले—प्राय-श्चित करना ही चाहिए। करना ही पड़ा।"

"यदि वह न करता।"

"सर्वनाश! वह तो पाँच-पाँच लड़कियों का बाप है। बड़ी बड़ी खरमखिनियों के गौरीदान की उम्र हो चुकी है। पेट के नीचे पूँछ समेत

कर सात गऊ भैंसे दहेज में देना चाहने से भी वर न मिलेगा। इससे भी भयंकर सजा मिलती है।"

"कैसी?"

"मरने पर श्राद्ध करने के लिये भी पुरोहित न मिलेगा। अन्त में शायद वेत्त जंगल गांव से भेड़िया-पुरोहित लाना पड़ेगा। यह तो भारी लज्जा की बात होगी। सात पुस्तों का सिर झुक जायगा।"

"श्राद्ध न करने से क्या होगा?"

"यह कैसी बात है? बाघ का भूत बिना खाये मरने लगेगा।"

"वह तो मर ही गया है। फिर कैसे मरेगा?"

"यह तो और विपद है। विना खाये मर जाना अच्छा है, किन्तु मरने के बाद खाना न मिले तो बचना कठिन है।"

पूपू दीदी चिन्ता में पड़ गयी। थोड़ी देर में भौहों को तान कर बोली—"तो फिर अंग्रेजों के भूत को खाना कैसे मिलता है।"

"जीवित दशामें वे जो कुछ खा चुके हैं, उसीसे उनके सात जन्मों का काम चलता है, हम जो कुछ खाते है, वह ऐसा है कि वैतरणी पार करने के पहले ही पेट भूख से छटपटाने लगता है।"

सन्देह की भाषा होते ही पूपे ने पूछा—"प्रायश्चित कैसा हुआ?"

मैंने कहा—"हॉक विद्या-वाचस्पति ने विधान दिया कि बाघ चण्डी लाल के दक्षिण-पश्चिम कोने में कृष्णपंचमी तिथि से आरम्भ करके अमावस्या की ढाई पहर रात तक केवल लोमड़ी की गरदन का मांस खाकर रहना पड़ेगा। इसमें भी शर्त यह है कि उसकी फुफेरी बहन अथवा मैसेरे साले के मझले लड़के के सिवा दूसरा कोई शिकार लावेगा तो काम न बनेगा—और दूसरी शर्त यह है कि पीछे के दायें पंजे से ही उसे नोच-नोच कर खाना पड़ेगा। इतनी बड़ी सजा का हुकुम सुनते ही

बाघ को कै आने की दशा हो गयी, चारो पैरों से खड़ा हो कर मुँह बाये वह ताकने लगा।"

"क्यों, इसमें भारी सजा क्या है?"

"कहती क्या हो लोमड़ी का मांस? अपवित्र हो जाना पड़ता है। बाघ ने दोहाई देकर कहा— बल्कि, मुझे नेवले की पूछ खाने को कहो तो वह भी ठीक होगा मैं राजी हूँ, किन्तु लोमड़ी की गरदन का मांस।"

"अन्त में क्या खाना ही पड़ा?"

"जरूर खाना पड़ा था।"

"दादा जी, देखता हूँ कि बाघ बड़े धार्मिक होते है।"

"धार्मिक न रहने से इतने नियमों का पालन कैसे हो सकेगा? इसी लिये तो सियार उन पर भारी भक्ति रखते हैं। बाघ की जूठन का प्रसाद पाने से वे लोग सेवन करते हैं। माघ मास की त्रयोदशी को यदी मंगल-वार पड़ जाय तो उस दिन खूब भोर में डेढ़ पहर रात रहते ही बूढ़े बाघ के पैर चाट आना सियारों का पुण्य कर्म होता है। इस पुण्य के लिए कितने ही सियार प्राण खो चुके हैं।

पूपू को बड़ा सन्देह हो गया। "यदि बाघ इतने धार्मिक होते हैं तो वे जीव हत्या करके कच्चा मांस क्यों खाते?"

"वह मांस साधारण होता है? वह तो मंत्र द्वारा शुद्ध किया हुआ मांस होता है।"

"मंत्र कैसा होता है?"

"उनका सनातन हालुम मंत्र है। उसी मंत्र को पढ़ कर वे जीव हत्या करते हैं। उसको क्या हत्या कहते हैं?"

"यदि हालुम मंत्र जपते समय भूल हो जाय?"

"बाघ पुंगव पण्डित का मत यह कि वे बिना मंत्र के जिस जीव को

मार डालते हैं। उसी जीव रूप में मृत्यु के बाद उनका जन्म होता है। उनको बहुत भय रहता है कि कहीं मनुष्य जन्म न लेना पड़े।"

"ऐसा क्यों।"

"उनका कहना है कि मनुष्य का सर्वाङ्ग लोमहीन रहता है, बहुत ही भद्दा! इसके अतिरिक्त पूंछ भी उनको नहीं होती। पीठ की मक्खियों को भगा देने के ही लिए उनको ब्याह करना पड़ता है। यही नहीं, देखो तो, वे लोग दो पैरों से खड़े होकर चलते हैं। देख कर हम हँस-हँस कर घबड़ा उठते हैं। आधुनिक बाघों में सबसे बड़े पण्डित शार्दूलरत्न जी कहते हैं कि जीव सृष्टि करते समय जब विश्वकर्मा का माल-मसाला खत्म हो गया, तभी अचानक मनुष्य बनाने का शौक उनको हुआ। इस कारण पैरों के तलवे में पञ्जा जुटाने की बात तो दूर रही, खुरों को भी वे न ला सके। जूता पहन कर ही वे अपने पैरों की लज्जा निवारण करते हैं। और शरीर की लज्जा वे लोग कपड़े से ढँक कर रखते हैं। सारी पृथ्वी में एकमात्र वे ही लज्जित जीव हैं। जीवलोक में इतनी लज्जा और किसी में नही होती।"

"बाघों को शायद बहुत ही घमण्ड रहता है।"

"बहुत अधिक। इसीलिए वे लोग इतनी सतर्क चेष्टा से जाति की रक्षा करने लगते हैं। एक मनुष्य की लड़की ने जाति की दोहाई देकर एक बाघ का खाना बन्द कर दिया था। इसी विषय को लेकर हमारे 'वह' नामधारी व्यक्ति ने कविता की रचना की है।"

"तुम्हारी तरह वह भी कविता बना सकता है?"

"उसको विश्वास है कि वह बना सकता है, इसको लेकर तो पुलिस बुलायी नहीं जा सकती।"

"अच्छा मुझे सुनाओ न !"

"तो सुनो ।—"

एक था मोटा रोने वाला बाघ,
शरीर में थे काले-काले दाग ।
एक दिन घुसा वह घर में,
आईना एक पड़ गया सामने ।
एक दौड़ से भाग चला बैरा,
बाघ देखने लगा निज चेहरा ।
गों-गों चीख उठा वह क्रोध से,
यह शरीर क्यों भरा दाग से ।
ढेकी गृह में पूँटू धान कूटे,
बाघ वहाँ जाकर जुटे ।
फुला कर भीषण दोनों मूछें,
बोले, ग्लिसेरिन सोप दो मुझे ।
पूँटू बोली यह कैसी है बात,
किसी जन्म में सुनी नहीं है तात ।
अंग्रेजी बोली सीखी नहीं गयी,
छोटी जात की हूँ मैं भाई ।
बाघ बोले तेरी बात है झूठी,
आँखें हैं क्या मेरी अति छोटी ।
शरीर के दाग कैसे हुए लोप,
बिना लगाये ग्लिसेरिन सोप ।
पूँटू बोली मैं हूँ काली-कलूटी,
कभी न लगाई साबुन की बट्टी ।

बात सुन कर आती है हंसी,
नहीं मैं मेमसाहब की मौसी।
बाघ बोला, तुझे नहीं है लज्जा,
खाऊंगा तेरा हाड़ और मज्जा।
पूंटू बोली, छिः छिः हे बाप,
यह कहने से भी लगता है पाप।
जानते नहीं क्या मैं हूँ अस्पृश्या,
महात्मा गांधी जी की हूँ शिष्या।
यदि मेरा मांस तुम खाओ,
बात जाने से फिर पछताओ।
पैर पकड़ती हूँ क्रोध छोड़ो,
बाघ बोले, भागो मुंह मोड़ो।
अरे छिः छिः अरे राम राम,
बाघ मुहल्ले में हूँगा बदनाम।
बात फैलेगी यह चारो ओर,
ब्याह की आशा होगी चकनाचूर।
बाघा देवी करेंगी भारी कोप,
मुझे न चाहिये ग्लिसेरिन सोप॥

जानती हो पूपू दीदी ! आधुनिक बाघों में एक भारी काण्ड चल रहा है—जिसे कहते हैं प्रगति, चेष्टा। उनमें जो प्रगतिशील हैं वे प्रचार काम में लग गये हे, बाघ समाज में कहते फिरते हैं कि अस्पृश्य कह कर खाद्य विचार करना, पवित्र जन्तु के प्रति अपमान दिखाना है। वे कह रहे हैं कि आज से हम जिसको ही पायेंगे उसे

ही खा जायंगे। बाएं पञ्जे से खाएंगे, दाएं पञ्जे से खाएंगे, पिछले पञ्जे से खाएंगे। हालूम-मन्त्र पढ़ कर भी खाएंगे, बिना पढ़े भी खाएंगे—यहाँ तक कि वृहस्पतिवार को भी हम नोच कर खाएंगे, शनिवार को भी हम काट कर खाएंगे—इतनी उदारता रक्खेंगे। ये बाघ बड़े युक्तिवादी और सब जीवों के प्रति इनका सम्मान अत्यन्त प्रबल है। यहाँ तक कि ये लोग पश्चिम पार के केवटों को भी खाना चाहते हैं, ऐसा ही उदार मन इनका है। जबर्दस्त दलबन्दी कायम हो गयी है। पुराने लोगों ने नवीन विचार वालों का नाम रखा है, किसान-मजदूर और माझी। इस बात को लेकर हंसी की धूम मच गयी है।"

पूपू ने कहा—"अच्छा दादा जी, तुमने कभी बाघ के ऊपर कविता लिखी है?"

हार मानने की इच्छा नहीं हुई। मैंने कहा—"हाँ मैंने लिखी है।"

"तो सुनाओ न।"

गम्भीर सुर में मैं सुनाने लगा—

निज सृष्टि में कभी न करते तुम अपमान,
शक्ति का भी हे विधाता, तुम करते सम्मान।
महिमा तव है अनन्त, प्रखर नश्वर का दान,
कैसी है विभीषिका जानता विश्व महान।
तुमने सौन्दर्य दिया है उसको ऐसा,
देह प्यारी मानों वज्र शिखा का जैसा।
झंझा उच्छृङ्खल सृष्टि-लांघ सब तोड़े,
तब दया का प्रतिवाद करने से न मुंह मोड़े।

\+ × +

जितने भी विप्लवों हैं जग में सारे,
सभी हैं सुन्दर अति मनमोहन वारे।
जो भी लाते हैं सबके ऊपर त्रास,
उनका भी तुम न करते हो परिहास।

पूपू चुप हो रही मैंने कहा—"क्या दीदी, यह कविता शायद अच्छी नहीं लगी ?"

वह कुण्ठित होकर बोली—"नहीं, नहीं अच्छी क्यों नहीं लगेगी ? किन्तु इसमें बाघ कहाँ है ?"

मैंने कहा—"जैसे वह झोप-झाड़ियों में रहता है, दिखाई नहीं पड़ता, तो भी वह भयङ्कर गुप्त रूप में रहता है।"

पूपू बोली—"बहुत दिन पहले तुमने मुझे ग्लिसेरिन सोप ढूढ़ने वाले बाघ की बात मुझसे सुनायी थी। उसकी खबर 'वह' कहाँ से पा गया था ?"

"वह मेरी बातों को चुराया करता है, उनको ही अपने मुंह से व्यक्त करता है।"

"किन्तु —"

"किन्तु नहीं तो क्या। उसने अच्छी कविता लिखी है।"

"किन्तु—"

"हाँ ठीक बात है। मैं इस तरह नहीं लिखता, शायद लिख नहीं सकता। वह मेरा माल चुराता है, उसके बाद जब उसके ऊपर पालिस करता है, तब पहचान लेना कठिन हो जाता है। ऐसी बात मैंने बहुत देखी है। ठीक वैसी ही कविता उसने बनायी है।"

"सुनाओ न।"

"अच्छा, तुम सुनो।"

सुन्दर वन में रहता बाघ,
सारे अङ्ग में चकत्ते दाग।
यथा समय में भोजन की,
कमी हुई थी खाने की।

तब हुआ वह परेशान,
क्रोध से होकर हैरान।
एक दिन वह चिल्ला उठा,
बोला बद्रूराम को उठा।

सुन रे बद्रूराम जल्दी,
ला दे पाँच जोड़ा भेड़ बेददबी।
भूख लगी है मुझको भारी,
खाकर सोऊंगा नींद सारी।

बद्रू बोला यह है कैसी बात,
गरजते हो क्यों इतनी रात।
यह तो नहीं है भद्रता,
इससे होती है अति व्यथा।

तेरी बात चुभती है भारी,
बेअदबी है इसमें जारी।
मेरा यह घर है जघन्य,
महापशु के लिए है अन्य।

तुम अपने घर को जाओ,
खाकर मौसी बाघिन को सुलाओ।

वह बाट जोहती ही होगी,
खाओगे तभी वह भी सुखी होगी।

तुमको मिलेगा साँप वहाँ,
मेंढ़क भी मिलेंगे जहां-तहां
और पाओगे खरगोश,
खाने में नहीं कुछ दोष।

जाओ बात मेरी मानों,
नहीं तो बदनामी ही जानो।
बाघ बोला—राम राम राम,
बात बन्द करो अब हे बद्रूराम।

बकते हो तुम अब कैसे,
सुन कर दुःख होता है ऐसे।
तुम हो बहुत बड़े पागल,
खोलो द्वार न होवे दङ्गल।

चाहो यदि कल्याण थोड़ा,
दिखाओ कहां है मेड़ा।
बकरा पालतू है कहां,
दिखा तो रक्खा है जहां।

बद्रू बोला यह नहीं अच्छा काम,
तब चरण पकड़ता यह गुलाम।
जीव-वध है महापाप,
इससे है लगता बड़ा पाप।

बाघ बोला हे राम राम,
मैं खाये बिना हूँ बेकाम।
बाघी मरेगी मैं भी मरूंगा,
तब पुण्य लेकर क्या होगा।
अतएव बकरा ही चाहिए,
नहीं तो खुद ही आइये।
यह कह पञ्जे को उठाया,
तब बद्दूराम भी घबड़ाया।
बोला आप यह सुनिये,
बकरे की कोठरी में जाइये।
द्वार खोल कर वह बोला,
जाओ घर में तुम भोला।
बकरे को खाओ सुख से,
मुझे छोड़ो समझो उससे।
बाघ गया उस घर में,
बद्दू हंसता रहा मन में।
द्वार का किवाड़ हिलाया,
बन्द कर ताला लगाया।
बाघ बोला यह कैसी बात,
बकरे की नहीं है जात।
उसका नहीं है आकार,
सब ही है यहाँ निराकार।
बद्दू बोला महेश ग्वाला,
उसमें था रहता अकेला।

आज रहता है यमराज,
तुमको मारेगा नहीं है लाज।
क्रोध से बाघ चिल्लाया,
बकरे को है कहाँ भगाया।
बट्टू बोला जाओ बन में,
बकरा है मेरे पेट में।

"क्या अच्छी लगी?"

"जो कुछ भी कहो दादा जी, किन्तु बाघ की कविता उसने खूब अच्छी लिखी है।"

मैंने कहा—"हो सकता है, अच्छी लिखी है, किन्तु वह ठीक लिखता है कि मैं ठीक लिखता हूँ, इस पर सम्मति देने के लिए कम से कम और दस वर्ष ठहरो।"

पूपू बोली—"किन्तु मेरा बाघ मुझे तो खाने नहीं आता।"

"यह तो तुमको प्रत्यक्ष देखकर ही समझ रहा हूँ। तुम्हारा बाघ क्या करता है?"

"रात को जब सोयी रहती हूँ, तब वह बाहर से खिड़की बकोटता रहता है। खोल देने से हँसने लगता है।"

"हो सकता है वे हँसमुख जाति के हैं, अंग्रेजी में जिसे कहते हैं 'ह्यूमरस' बात बात में दांत निपोरते हैं।"





पूपू ने आकर पूछा—"दादाजी, तुमने कहा था कि वह तुम्हारे घर निमंत्रण खाने आयेगा। क्या हुआ?"

"सब कुछ ठीक ही हुआ था। हाजीमियाँ ने कवाब पकाया था। खाने में मजेदार था।"

"उसके बाद?"

"उसके बाद खुद उसमें से लग भग बारह आना मैं खा गया। बाकी मुहल्ले के कालू को दे दिया था।"

"खाकर कालू ने कहा था दादा जी यह तो हमारे घर के कच्चे केले की तरकारी से कहो अच्छा बना है।"

"उसने क्या कुछ भी नहीं खाया?"

"खाने का उपाय कहाँ था।"

"वह क्या नहीं आया?"

"उसमें आने की सामर्थ्य कहाँ रही?"

"तो फिर वह कहाँ है?"

"कहीं भी नहीं।"

"घर में है?"

"नहीं।"

"अपने गाँव पर है?"

"नहीं।"

"विलायत है?

"नहीं!"

"तुमने कहा था कि उसके अण्डमन जाने की बात—एक तरह से पक्की हो गई है। क्या वह चला गया?"

"जरूरत नहीं पड़ी।"

"तो फिर क्या हुआ, मुझे बताते क्यों नहीं?"

"डर जाओगी, या दुःख पाओगी इसीलिये नहीं बताता।"

"कुछ भी हो बताना पड़ेगा?"

"अच्छा सुनो, उस दिन क्लास में पढ़ाने के लिये मुझे पाठ तैयार करने की बात थी। 'विदग्ध मुख मण्डन' पढ़ने की जरूरत थी। एक समय हठात् मैंने देखा कि वह पुस्तक पड़ी हुई है, हाथ में आ पड़ी है 'पाँचू की फुफेरी सास' पढ़ते-पढ़ते मुझे नींद आ गयी। उस समय रात के ढाई बजे रहे होंगे। सपने में मैंने देखा कि, गरम तेल उफना उठने के कारण हमारी कीनी बाम्हनी का मुँह एक दम जल गया है। तारकेश्वर बाबा के सामने सात दिन सात रात धरना देने पर उसे प्रसाद में लाहिड़ी कम्पनी का 'मूनलाइट स्नो' मिल गया है, उसको ही मुँह पर रगड़ कर लगा रही है। मैंने समझा कर कहा—इससे तो काम न चलेगा। भैंस बच्चे के गाल का चमड़ा काट कर मुँह पर जोड़ लगवाना पड़ेगा, नहीं तो रंग ठीक न मिलेगा। सुनते ही सवा तीन रुपये मुझसे उधार लेकर

वह धरमतल्ला बाजार को—भैंस खरीदने के लिये दौड़ चली। ऐसे ही समय में कमरे में एक तरह की आवाज सुनाई पड़ी। मानो कोई हवा की बनी चप्पल पहन कर हनाहन समूचे कमरे में चहल कदमी कर रहा है। हड़बड़ा कर मैं उठ पड़ा, लालटेन की बत्ती को जरातेज कर ताकने लगा। दिखाई पड़ा कि कमरे में कोई आया है, किन्तु वह कौन है, वह क्या है कैसा है, कुछ भी मैं समझ न सका। छाती धड़कने लगी, तो भी गले की आवाज तेज करके मैंने कहा—तुम कौन हो? क्या पुलिस बुलाऊँ?

अद्भुत भरे गले से वह बोला—"क्या दादा, तुम पहचानते नहीं हो? मैं हूँ तुम्हारी पूपू दीदी का 'वह' यहाँ तो मेरे लिये निमंत्रण था।

मैंने कहा—"निरर्थक बात कहते हो? तुम्हारा चेहरा कैसा हो गया है।"

वह बोला—"चेहरे को मैंने खो दिया है।"

"खो दिया है? इसका क्या अर्थ है।"

"अर्थ मैं बता रहा हूँ। पूपू दीदी के घर भोज था। खूब जल्दी जल्दी नहाने चला गया। उस समय केवल डेढ़ बजे रहे होंगे, तोलिया पाड़ा घाट पर बैठ कर झामे से मुँह माँज रहा था। माँजते-माँजते इतना आराम मिला कि मुझे नींद आने लगी। झूमते-झूमते मैं जाल में कूद पड़ा, उसके बाद क्या हुआ, इसकी जानकारी मुझे नहीं है।

"नहीं है?"

"मैं तुम्हारा शरीर छूकर कह रहा हूँ।"

"अरे अरे! शरीर छूने की जरूरत नहीं है, सुनते जाओ।"

"शरीर में खुजली थी, खुजलाने लगा तो दिखाई पड़ा कि नख भी नहीं है, खुजलाहट भी नहीं है। अत्यन्त दुःख हुआ, हाव हाव करके रोने लगा, किन्तु बचपन से जो हाव हाव बिना दाम का मुझे मिला था,

वह कहाँ चला गया। जितना ही चिल्लाने लगा, चिल्लाना भी नहीं होता था, रुलाई भी सुनाई नहीं पड़ती थी। इच्छा हुई कि बर के पेड़ पर सिर पटक दूँ, सिर की चोटी भी ढूँढ़ने से कहीं नहीं मिली। सबसे भारी दुःख यह था कि बारह बज चुके थे। 'भूख कहाँ भूख कहाँ कह कर पोखरी के किनारे चक्कर लगाने लगी। भूख का चिन्ह भी कहीं न दिखाई पड़ा।

तुम यह क्या कह रहे हो, जरा ठहरो। ऐ दादा, दोहाई तुम्हारी। मुझे ठहरने को मत कहो! ठहरने का दुःख कैसा होता है, इसे तुम न ठहरने वाला आदमी कैसे समझ सकते हो। मैं रुकूँगा नहीं, किसी तरह भी न रुकूँगा, जब तक सम्भव होगा, मैं न रुकूँगा।

यह कह कर वह उछल-कूद मचाने लगा। अन्त में उलटने-पुलटने लगा। मेरी कार्पेट के ऊपर जल में सूँइस की तरह उछलने लगा।

तुम यह क्या कर रहे हो!

दादा, एक बार मैं रुक गया था अब किसी तरह भी मैं रुकने वाला नहीं हूँ, मार पीट करोगे तो वह भी मुझे अच्छी लगेगी। जब मैं यह जान गया कि पूरा मुक्का खाने लायक पीठ नहीं है, तब सात कौड़ी पण्डित जी की बात स्मरण करके मेरी छाती फट जाने लगी, किन्तु छाती ही नहीं रही तो फटेगी क्या। यदि ऐसी दशा 'कोई' मछली की होती तो वह रसोइयां महाराज के हाथ पैर पकड़ कर खौलते हुए तेल में इस पीठ से उस पीठ तक उलट पुलट कर पकाने का अनुरोध करती, अहा। जो पीठ खो चुका है, उसी पीठ पर पण्डित जी की कितनी ही मुक्कियाँ खा चुका हूँ। आज यही सवाल उठ रहा है दादा, एकबार खूब दमादम मुक्के लगा दो।

यह कर उसने मेरे पास आकर अपनी पीठ रोप दी।

मैं सिहर उठा बोला—जाओ, जाओ यहाँ से हट जाओ।

वह बोला—मैं अपनी बात समाप्त कर लूँ। मैं गाँव-गाँव में घूमता हुआ शरीर ढूंढ़ने लगा। उस समय दिन का तीसरा पहर हो चुका था। धूप से घूमने लगा, किसी तरह भी धूप में जल कर कष्ट नहीं मिल रहा था। यह दुःख जब असह्य होने लगा था, तभी मैंने देखा कि हमारे पातू चाचा मोची टोला के वट-वृक्ष के नीचे गाँजा पीकर लाल नेत्र लिये बैठे हुए हैं। मुझे जान पड़ा मानों, उसका प्राण-पुरुष विन्दु बन कर ब्रह्मतालु की चोटी पर पहुँचा है और जुगनू की तरह टिमटिमा रहा है। मैं समझ गया कि यह सुयोग अच्छा मिला है। नाक के छेद से आत्मा को भीतर ठेल कर शरीर में प्रवेश करा दिया, जैसे कि नये नगौरे जूते में पैर को ठूस देना पड़ता है। वह काँखने लगा, भर्राई हुई आवाज में बोल उठा—"तुम कौन हो भैया, अन्दर जगह न होगी।"

उस समय मैं उसका गला दखल कर चुका था। मैंने कहा—"तुमको जगह न होगी, मुझे तो होगी। जाओ तुम निकल जाओ।"

वह गों गों करने लगा। बोला—बहुत निकल चुका, थोड़ा और बाकी है। धक्का लगाओ।

मैंने लगाया। वह बाहर निकल गया।

इधर पातू चाचा की घरनी ने आकर कहा—"पूछती हूँ कौन है रे मुँहजला!"

कान शीतल हो गये। मैंने कहा—"कहो, कहो, फिर कहो, सुनने में बात बड़ी मीठी लग रही है, मुझे कभी आशा नहीं थी कि मैं ऐसी पुकार किसी की मुँह से सुन सकूँगा।"

बुढ़िया ने सोचा, मैं यह मजाक कर रहा हूँ। झाड़ू लाने के

लिए घर में चली गयी। मैं डर गया था कि जो देह मिल गयी थी, कहीं खो न जाय। घर आकर आइने में अपना मुँह देखने लगा, सारा शरीर सिहर उठा। इच्छा हुई कि रेती से मुँह को छील डालूँ।

शरीर खोने वाले को शरीर मिल गया, किन्तु चेहरा खोने वाले को चेहरा अगाध जल के नीचे चला गया है, उसको पाने का उपाय क्या है?

ठीक इसी समय दीर्घ विच्छेद के बाद भूख मिल गयी। एकदम पेट को घेर कर। सारी नसें भूख से तपड़ने लगी। भूख ज्वाला से आँखों से कुछ दिखाई नहीं पड़ता था, जिसको पाऊं उसको ही खा जाऊं ऐसी अवस्था हो गयी। ओः कैसा आनन्द होगा।

याद पड़ गया कि तुम्हारे घर पूपू दीदी को निमन्त्रण मिला है। रेल-किराये का दाम नहीं था। पैदल ही चलने लगा। चलने की असम्भव हिम्मत से कैसा आराम मिलता है यह मैं क्या कहूँ। स्फूर्ति से एकदम पसीने से लथ-पथ हो गया। एक-एक कदम बढ़ता जा रहा था, और मन ही मन कह रहा था, रुक नहीं सकता। चलने लगा तो चलता ही रहूँगा। जीवन में कभी ऐसा बेदम चलना हुआ ही नहीं था। दादा तुम तो 'एक पूरा शरीर लेकर आराम कुर्सी पर निश्चिन्त बैठे हुए हो, तुम तो समझ ही नहीं सकते कि कष्ट सहने में क्या मजा है। इस कष्ट से यह बात समझ में आ जाती है कि मैं अवश्य हूँ, खूब अच्छी दशा में हूँ, सोलह आने से भी अधिक हूँ।

मैंने कहा—मैं सब समझ गया, अब क्या करना चाहते हो बताओ।

करने का भार तुम्हारे ही ऊपर है। तुमने न्यौता दिया था। खिलाना पड़ेगा। यह बात भूल जाने से तो काम न चलेगा।

तो मैं जाता हूँ पूपू दीदी के पास।

खबरदार!

दादा, तुम धमकाते हो झूठमूठ, मृत्यु से बढ़कर कोई खराबी नहीं है।

मैं जा रहा हूँ।

किसी हालत में भी नहीं।

वह बोला—मैं जरूर जाऊँगा।

मैं बोला—कैसे जाओगे देखूँगा।

वह कहने लगा—जाऊंगा ही, जाऊंगा ही, जाऊंगा ही।

मेरी मेज पर चढ़ कर नाचते-नाचते बोला—जाऊंगा ही, जाऊंगा ही, जाऊंगा ही।

अन्त में छन्द के सुर में गाने लगा—जाऊंगा ही, जाऊंगा ही, जाऊंगा ही।

मैं अब स्थिर न रह सका। लम्बे बालों का झोंटा मैंने पकड़ लिया। खींचतान से ढीले मोजे की तरह, उसका शरीर सरक कर गिर पड़ा।

सर्वनाश हो गया। गंजेड़ी के आत्मा-पुरुष को खबर कैसे दूँ। मैंने चिल्ला कर कहा—अरे, अरे! सुनो, तुम घुस जाओ शरीर के भीतर, लेजाओ इसको।

पूपू दीदी ने आँखें फाड़कर कहा—"यह क्या सच्ची घटना है, दादा जी।"

मैंने कहा—"यह सत्य से भी बहुत सच्ची है। यह गल्प है।"



६

उस समय मैं एम० ए० क्लास के लिए एरियोपैथिटि का नोट लिख रहा था, मिला कर देखने लिए मुझे कई पुस्तकें पढ़ने की जरूरत पड़ी थी। एक पुस्तक थी 'इएटरनेशनल मेलिफ्लुअस ऐन्ना कैडान्ना इसके साथ ही श्री इयर्स आफ इएडो-इरिडर्टमिनेशन नामक पुस्तक का परिशिष्ट भी मैं देख रहा था। लाइब्रेरी से 'अनो-मैटोपिया आफ टिएटिन्याब्युलेशन' मंगाने का प्रबन्ध कर चुका था। ऐसे ही समय में वह उतावले भाव से आ धमका।

मैंने कहा—"क्या बात है? स्त्री ने फाँसी लगा ली है क्या?"

वह बोला—"अवश्य ही लगाती, यदि वह रहती। किन्तु तुम यह क्या कह रहे हो?"

"क्यों क्या हुआ?"

"मेरे सम्बन्ध में अबतक तुम अनेक गल्प रच चुके। यह मेरा सौभाग्य है कि तुमने मेरा नाम नहीं दिया है, नहीं तो भद्र समाज में मुंह दिखाना कठिन हो जाता। मैंने देखा कि पूपू दीदी को

इनसे मजा मिल रहा है, इस कारण सब सहता रहा। किन्तु इस बार तो उलटी ही बात हो गयी।"

"क्यों, क्या हुआ ? बता हो दो न।"

"तो सुनो। कल पूपू दीदी सिनेमा देखने गयी थी। मोटर पर चढ़ने जा रही थी मैंने पीछे से आकर कहा—बहन, अपनी गाड़ी में मुझे चढ़ा कर ले चलो। इसके बाद मैं क्या कहूँ दादा, एकदम हिस्टीरिया।"

"यह कैसे ?"

"हाथ से आँखें ढँक कर चिल्लाती हुई दीदी ने कहा—"जाओ, जाओ, गंजेड़ी का शरीर चुरा कर तुम मेरी गाड़ी पर चढ़ न सकोगे। चारों तरफ लोग दौड़ते हुए आ गये। मुझे पकड़ कर पुलिस में ले जाने को तैयार हो गये। अपने जीवन में अनेक निन्दाएं सुन चुका हूँ, किन्तु ऐसी वास्तविक निन्दा तो मैंने कभी नहीं सुनी थी। गंजेड़ी का शरीर चुराने का आरोप! मेरे किसी घनिष्ठ मित्र ने भी मेरी निन्दा नहीं की थी। घर लौटने पर ये सारी बातें सुनाई पड़ीं। यह कीर्ति तुम्हारी ही है।"

"अवश्य ही मेरी है। क्या करूं बता दो। तुमको लेकर कहाँ तक गल्प रचना करूँ। उम्र बढ़ चुकी है, कलम को मानो गठिया ने पकड़ लिया है। पू. दीदी की फरमाइश के अनुसार असम्भव गल्प सुनाने लायक हलकी चाल अब मेरी कलम में नहीं रही। इस कारण इस अन्तिम गल्प में मैंने तुमको एकदम समाप्त ही कर दिया है।"

"समाप्त होने को मैं राजी नहीं हूँ दादा। तुम्हारी दोहाई,

पूपू दीदी का भय तोड़ दो, उसे समझा कर कह दो—यह तो गल्प है।"

"मैंने कहा था, किन्तु वह भय छोड़ देना नहीं चाहती। नसों में भय जम गया है। उपाय न देख कर मैं उस पातू गंजेड़ी को सामने ले आया। फल उलटा हो गया। पातू के शरीर के ऊपर तुम ही घूमते-फिरते हो इसका ही प्रमाण प्रत्यक्ष हो गया।"

"तो दादा तुम गल्प को उलट दो। धनुष्टङ्कार रोग से पातू को मर जाने दो। गंजेड़ी के शरीर को नीमतला घाट पर जला डालो। आडम्बर के साथ उसका श्राद्ध करूँगा, पूपू दीदी को निमन्त्रण देकर बुलाऊँगा। जो भी खर्च लगेगा मैं अपनी जेब से दूँगा। मैं हूं दादी के गल्प का बहुरुपिया। अकस्मात इतने बड़े पद से मुझे च्युत करने से मैं न बचूँगा।"

"अच्छा गल्प के उलटे रथ से तुमको मैं पूपू दीदी के घर में लौटा आऊँगा।"

+ + +

दूसरे दिन सन्ध्या के समय वह आया। मैंने अपनी कहानी शुरू कर दी:—

मैंने कहा—"पातू की स्त्री ने पति की सम्पत्ति पर अपना अधिकार पाने के लिए तुम्हारे नाम अभियोग चलाया है।"

यह सुनते ही वह बोल उठा—"यह चल नहीं सकता दादा। पातू की स्त्री को तुमने अपनी आँखों से देखा तो नहीं है। यदि वह मुकदमें में जीत जायगी, तो उस हालत में प्रतिवादी अफीम खा कर मर जायगा।"

"भय क्या है। मैं वचन देता हूँ, हार हो या जीत हो, मैं तुमको बचा रक्खूंगा।"

"अच्छा तुम कहते जाओ।"

"तुमने हाथ जोड़ कर हाकिम से कहा—"हुजूर, धर्मावतार! मैं किसी भी समय उसका पति नहीं रहा।"

वकील ने आँखें तरेर कहा—"तुम पति नहीं हो, इसका क्या अर्थ है?"

"तुमने कहा—इसका अर्थ यह है कि अबतक मैंने उससे ब्याह नहीं किया है, अन्ततः कोई दूसरा अर्थ मुझे दिखाई नहीं पड़ता।"

रामसदय मुख्तार ने खूब धमका कर कहा—"तुम ही उनके पति हो झूठ मत बोलो।"

तुमने जज साहब की तरफ देख कर कहा—जीवन में मैं बहुत बार झूठ बोल चुका हूँ, किन्तु उस बुढ़िया से मैंने अपनी जानकारी में स्वेच्छा से कभी ब्याह किया है इतनी बड़ी जबरदस्त झूठी बात बोलने की ताकत मुझमें नहीं है। इसका स्मरण होते ही छाती कांप उठती है।"

इसके बाद ३५ गंजेड़ी गवाही के लिए बुलाये गये। गाँजा मलने के दाग वाली अंगुली तुम्हारे मुंह पर सहला-सहला कर एक-एक करके सभी ने कहा कि यह चेहरा बिलकुल उसी पातू का है। यहाँ तक कि ललाट की बायी तरफ की मस्सा भी वही है।

"किन्तु—"

मुख्तार रुष्ट होकर बोल उठा—"किन्तु क्या?"

उन लोगों ने कहा—"पातू का ही सही रूप है, किन्तु यह वही पातू है। यह बहुत शपथ लेकर निश्चिन्त रूप से हम कैसे कह

सकते हैं। ठकुराइन को तो हम लोग जानते हैं, मित्र को कम दुःख नहीं मिला है, उसकी पीठ पर अनेक झाड़ू टूट चुके हैं। उनका दाम बचता तो गाँजा खरीदने के खर्च में कमी न पड़ती। इसीलिए हुजूर, हम यही कहते हैं कि अदालत में कसम खाकर हम भले आदमी का सत्यनाश नहीं कर सकते।"

मुख्तार ने लाल आँखों से कहा—"तो फिर यह कौन है बताओ। द्वितीय पातू बना देने की शक्ति भगवान में भी नहीं है।"

गंजेड़ियों का सरदार बोला—तुम ठीक कहते हो भैया, ऐसी उत्पत्ति दैवात् होती है! भगवान शपथ खा चुके है, ऐसा काम वे कभी न करेंगे। फिर भी मैं स्पष्ट ही देख रहा हूँ कि किसी शैतान ने भगवान को उलटा जवाब दिया है, एकदम उस्ताद के हाथ की नकल है, पक्के जालसाज का काम है। पातू का शरीर सूखता गया था, जिससे उसकी नाक सिकुड़ कर टेढ़ी हो गई थी, वह नाक भी उसके चेहरे पर लगा दी गयी है, उसके हाथों के चमड़े की नकल करने में शायद हजार चिमगादड़ों का चमड़ा खर्च करना पड़ा है।"

तुमने देख लिया कि यह मुकदमा टिकने वाला नहीं है, तुमने जजसाहब से कहा—मुझे आप एक सप्ताह का समय दीजिये। असली पातू पक्षीराज को मैं इस अदालत में हाजिर कर दूँगा।"

उसी क्षण तुम तेलियापाड़ा के पोखरे के घाट के लिए दौड़ पड़े, समय अच्छा था ठीक उसी समय तुम्हारा शरीर जल पर उतरा रहा था। तुमने पातू के शरीर के किनारे जमीन पर चित ही फेंक दिया और अपनी पुरानी खोली में समा गये। लम्बी साँस लेकर आकाश की ओर ताक कर तुम पुकारने लगे—अरे पातू।"

उसी क्षण उसका शरीर उठ खड़ा हुआ। पातू बोला—"मैं तो साथ

ही साथ था, गाँजा के नशे से मन अस्थिर था, इच्छा होती थी कि आत्महत्या कर डालूँ, किन्तु उस रास्ते को भी तुमने छेक रक्खा था। जब मैं जीवित था, तब जीवित रहने का शौक सोलहो आने था, ज्यों ही मैं मर गया त्यों ही मेरा यह दुःख असह्य हो उठा कि अब मैं किसी तरह भी किसी समय में भी न मर सकूँगा। यह योग्यता भी मुझसे न रही कि, एक मामूली रस्सी लेकर गले में फँसरी लगा लूँगा।"

तुमने कहा कि जो होना था वह तो हो ही गया, अब चलो कचहरी में। जज साहब से कह कर तुम्हारे गाँजे का हिस्सा ठीक करा दूँगा।

तुम लोग कचहरी में गये। जज साहब ने पातू को धमका कर कहा—"यह बुढ़िया तुम्हारी स्त्री है या नहीं, सच बताओ।"

पातू बोला—"हुजूर, सच बोलने की इच्छा नहीं होती, किन्तु भले आदमी का लड़का हूँ, झूठ बोलकर पाप न करूँगा। मैं निश्चय जानता हूँ कि पाप के साथ साथ वे ही पीछे-पीछे दौड़ पड़ेगी। वे ही प्रथम विवाह की मेरी पत्नी है।

साहब ने पूछा—"और भी है क्या?"

पातू बोला—न रहने से इज्जत न बचेगी। कुलीन घराने का लड़का हूँ? नैकष्य कुलीन।"

\+ \+ \+

रविवार को पूपू दीदी ने कहानी पढ़ी थी उसने मुझसे पूछा—"तुमने लिखा है कि बहुत सी अंग्रेजी पुस्तकें लेकर किसी कालेज के लिये पुस्तक लिख रहे हो, तुम्हारा कालेज कहाँ है। इसके सिवा वैसी पुस्तकें खोलते तो मैं कभी नहीं देखती, तुम तो केवल कविता लिखते हो।"

स्पष्ट जवाब न देकर मैं जरा हँस पड़ा।

"अच्छा, दादाजी, तुम क्या संस्कृत जानते हो ?"

"देखो पूपू दीदी, ऐसे प्रश्न बहुत रूढ़ होते हैं, मुँह के सामने न पूछना चाहिये ।"



१०

प्रातःकाल पूपू दीदी ने घबड़ाहट के साथ पूछा—"उस 'वह' नामक व्यक्ति के बारे में जितनी कहानियाँ है वे क्या अब समाप्त हो गई ।"

दादा जी ने अखबार हटाकर चश्मे को ऊपर उठा कर कहा—"कहानी सुनने वाले के दिन समाप्त हो जाते हैं ।"

"अच्छा, वह तो अपना शरीर वापस पा गया, उसके बाद क्या हुआ बताओ न।"

"उसको फिर शरीर को काम में लगाकर मरना पड़ेगा, शरीर को तरह तरह जिम्मेदारियों में लगा देना पड़ेगा। कभी शरीर पर फूँक देता हुआ घूमता फिरेगा कभी गाली गलौज सुनेगा, कभी न सुनेगा। उसको शरीर रहते भी उसका आलस्य देख कर लोग कहेंगे, किसी भी बात में उसका शरीर काम नहीं देता! कभी तो उसका शरीर घूमेगा, कभी शरीर की दशा कैसी हो जायगी शरीर घुल जायगा। कभी शरीर भार बन जायगा, कभी शरीर अवसन्न हो जायगा, कभी सिकुड़ जायगा, कभी सिहर उठेगा, रोमांचित हो उठेगा। संसार कभी शरीर से सहने योग्य हो जायगा, कभी उसकी उलटी दशा होगी। किसी की बात से शरीर जल जायगा, किसी की बात से शरीर शीतल हो जायगा, एक शरीर को लेकर इतनी दिक्कतें हैं।"

"अच्छा दादा जी, जब वह दूसरे का शरीर लेकर घूमता रहता था, तब किसको दिक्कत होती थी? शरीर शून्य सा मालूम होने पर उसको मालूम होता था कि दूसरे को मालूम होता था?"

"कठिन बात है। मैं तो बता न सकूँगा। उससे पूछने से उसका भी माथा चकराने लगेगा।"

"दादा जी, मैंने कभी यह नहीं सोचा था कि शरीर को लेकर इतने बखेड़े उठाते हैं।"

"उन बखेड़ों को जोड़ कर ही तो इतनी कहानियाँ तैयार होती हैं। शरीर के ऊपर सवार होकर ही तो कहानियाँ चारो तरफ दौड़ लगा रही हैं। कोई शरीर कहानी का गधा है कोई शरीर है ऐरावत हाथी।"

"तुम्हारा शरीर क्या है, दादा जी?"

"मैं न बताऊँगा शास्त्र अहंकार करने का निषेध करता है।"

"दादा जी 'वह' के बारे में तुमने कहानी क्यों बन्द कर दी?"

"मैं बता रहा हूँ, आलस्य का स्वर्ग सभी स्वर्ग के ऊपर है। वहाँ जो इन्द्र बैठकर हजार नेत्रों को आधा बन्द करके अमृत पी रहे हैं, वे हैं गल्प के देवता। मैं उनका भक्त हूँ। किन्तु उनकी सभा में मैं आज कल जा ही नहीं सकता। मेरे हिस्से में गल्प का प्रसाद बहुत दिनों से बन्द है।"

"क्यों?"

"रास्ता भूल गया था।"

"कैसे?"

"अमरावती की सुरधुनी नदी के एक तट पर इन्द्रलोक है, उसके ही पास एक और स्वर्ग है। उस स्थान के आकाश में कारखाने के काले रंग के धुएँ की पताका उड़ रही है। वह है काम का स्वर्ग। वहाँ हाफपैण्ट पहने विश्वकर्मा देवता हैं। एक दिन शरत्काल के प्रातःकाल पूजा के थाल में सिउलीफूल सजाकर मैं रास्ते से जा रहा था। उसी समय साइकिल पर सवार हो कर एक पण्डा आ गया। वहां उसके झोले में एक खाता था। छाती की जेब में एक लाल स्याही थी, एक काली स्याही की फाउण्टेनपेन थी। अखबारों की कतरनों का बण्डल चीनी कोट की दोनों जेबों से बाहर निकला हुआ था। दायें हाथ की कलाई में जो घड़ी थी उससे स्टैण्डर्डटाइम, और बायें हाथ की कलाई की घड़ी से कलकत्ता टाइम बता रही थी। बैग में ई० आई० आर०, ए० बी० आर०, एन० डब्लू० आर०, बी० एन० आर०, बी० बी० आर० यस० आई० आर० को टाइमटेबिल रक्खे हुए थे। छाती के पाकेट में डायरी समेत नोट बही

थी। धक्का लगने से मुँह के बल गिरने में कसर नहीं थी। वह बोला—"आकाश की तरफ ताकते हुए किस चूल्हे में जा रहे हो।"

मैंने कहा—"क्रोध मतकरो पण्डित जी। मन्दिर में पूजा करने जा रहा हूँ। ढूढने से रास्ता नहीं मिलता।"

उसने कहा—"तुमलोग शायद बादल की तरफ मुँह बाये ताकते हुये रास्ता ढूढ़ने वालों के दाल के हो। चलो रास्ता दिखाता हूँ।"

मुझे घसीटते हुए विश्वकर्मा जी के मन्दिर में वे ले गये। 'हाँ' 'नहीं' करने का समय नहीं था। कुछ भी पूछने के पहले ही बोला—"यहाँ थाल रख दो। जेब से सवा रुपया दक्षिणा निकालो।"

मैंने मूर्ख की तरह पूजा की। उसी क्षण उसने अपनी नोट बही में हिसाब नोट कर लिया, कलाई की घड़ी की तरफ देख कर बोला—काम हो गया, अब जाओ। समय नहीं है।"

दूसरे ही दिन से मैंने देखा कि फल प्रकट हो चला है। भोर में साढ़े चार बज चुके थे। डाकू टूट पड़े हैं सोच कर मेरी नींद टूट गयी। मैं सुनने लगा, अनाथ तारिणी सभा के सदस्य गण बारह-तेरह-साल के पचीस लड़कों के साथ, दरवाजे के पास गाना गा रहे हैं—

"पेट में जितना अँटता
उससे ज्यादा तुम हो खाते।
रुपये पैसे के भार से तेरे,
कोट की पाकेट फटते जाते।
हिसाब देख कर समझोगे,
अनाथों के ऋणी हो होगे।
तारो, गरीबों को तारो,
तारो, तारो उनको तारो।"

"तारो, तारो" चिल्लाते-चिल्लाते खोपड़ी पर भयंकर चपेटे पड़ने लगे। मन ही मन जितना ही हिसाब लगा रहा था कि कितने रुपये जमा हैं, चपेटों ने कानों पर उतने ही ताले लगा दिये। साथ ही साथ घड़ी-घंट बजने लगे और तारो तारो, कह कर लड़कों ने नाचना शुरू किया। असहनीय हो उठा। दराज खोल कर थैली ले आया। उन लोगों के सरदार की सात दिनों से हजामत नहीं बनी थी। उसने उत्साहित हो कर अपनी चादर पसार दी। थैली झाड़ने लगा तो उसमें से एक रुपया नौ आने, तीन पैसे झर पड़े। महीने के दो दिन बाकी थे। दर्जी को देना चुकाने के लिए मैं उतना रख छोड़ा था।

उन लोगों ने गाली देना शुरू किया। बोले—"रुपये का थाह तुम्हारे घर में नहीं है। सदा पैर के ऊपर पैर रक्खे गद्दी नशीन होकर बैठे रहते हो। तुम यह बात भूल गये हो कि जिस दिन तुम्हारी तरह लखपती का जो मूल्य होगा, तुम्हारी तरह फटे पुराने कपड़े पहनने वाले भिखारियों का भी वही मूल्य रहेगा।"

ये सभी बातें पुरानी ही जान पड़ीं, किन्तु लखपती का विशेषण सुन कर शरीर रोमांचित हो उठा। वंगदेश में मैं सरकारी सभापति बन गया। आदि भारतीय संगीत सभा, सेवार धंसिनी सभा, मृत सत्कार-सभा। साहित्य शोधन-सभा, चण्डीदास-समन्वय-सभा, ईख के छिलकों की व्यापारिक परिणति सभा, पिंजड़ापोल उन्नति-साधिनी सभा, और व्ययनिवारिणी—दाढ़ी मूँछ रक्षिणी सभा—इत्यादि सभाओं का मैं विशिष्ट सभ्य बन गया हूँ। मेरी रचित घनुष्टंकार तत्व पुस्तक की भूमिका लिखने के नव्य गणित पाठ पर सम्मति देने, भवभूति-जन्म-स्थान-निर्णय पुस्तिका के ग्रन्थकार को आशीर्वाद देने रावलपिण्डी के फारेस्ट-अफसर की कन्या का नामकरण करने, दाढ़ी कमाने वाले साबुन की प्रशंसा करने,

पागलपन की औषधि के सम्बन्ध में अपनी अभिज्ञता का प्रचार करने के लिए अनुरोध-पत्र मेरे पास आ रहे हैं।

\+ + +

"दादाजी, तुम झूठमूठ इतना बक बक करते हो कि 'समय नहीं है' यह कह देने से कोई भी विश्वास न करेगा। आज तुमको बताना ही पड़ेगा कि शरीर वापस मिल जानेपर उसने क्या किया?"

"बहुत ही खुश होकर वह दमदम चला गया।"

"दमदम किसलिए?"

"बहुत दिनों के बाद जब उसे अपने दोनों कान वापस मिल गये, तो अपने ही कानों से आवाज सुनने का उसका शौक मिटता ही नहीं था। श्यामबाजार की मोड़ पर ट्रामों की, बसों की घरघर आवाज सुनने के लिए बैठा रहता था। टीटागढ़ के चटकल के दरबान के साथ उसने समझौता कर लिया। उसके ही कमरे में बैठ कर मशीन की गर्जना सुनता रहता था। आलूदम और रसगुल्ला लेकर दोने में वह बर्नकम्पनी के लोहार की दूकान पर बैठ कर खाया करता था। बन्दूक का निशाना लगाने का अभ्यास करने के लिए गोरी फौज दमदम चली गयी है, वहाँ जाकर उसकी ही धुम्धुम् आवाज टार्गेट के उस पार बैठ कर सुना करता था। सुनते-सुनते इतना आनन्दित हुआ कि स्थिर न रह सका। टार्गेट इस ओर सामने आ गया और मुंह बढ़ा कर देखने लगा। एक गोली आकर उसके माथे पर लग गयी।

"बस।"

"बस क्या दादा जी!"

"बस का अर्थ है कहानी एकदम खत्म हो गयी।"

'नहीं, नहीं, यह तो हो ही नहीं सकता। तुम मुझे धोखा दे रहे हो। इस तरह तो सभी कहानियाँ खत्म हो सकती हैं।'

"जरूर ही खत्म होती हैं।"

"नहीं, किसी तरह भी यह नहीं होगा। उसके बाद क्या हुआ बताओ।"

"यह क्या कहती हो मर जाने के बाद भी?"

"हाँ, मर जाने के बाद भी।"

"मैं तो यही देख रहा हूँ कि तुम कहानी की सावित्री बन गयी हो।"

"नहीं, तुम इस तरह मुझे नहीं बहका सकते, बताओ क्या हुआ?"

"अच्छी बात है लोग कहा करते हैं कि मृत्यु से बढ़ कर कोई भी अनिष्ट नहीं है। मृत्यु से भी बढ़ कर गालियाँ होती हैं, यही बात मैं तुमसे अब कहूँगा। फौज का डाक्टर तम्बू में रहता था, वह बड़ा डाक्टर था। उसे जब खबर मिली कि उस मनुष्य के मगज में गोली लग गयी है, और उसी से वह मर गया है, तब बहुत ही खुश होकर बोल उठा—हुर्रा।"

"खुश क्यों हुआ?"

"उसने कहा—अब दिमाग बदलने की परीक्षा होगी।"

"दिमाग कैसे बदला जाता है?"

"यह विज्ञान की करामात है। चिड़ियाखाने से वह एक बनमानुष ले आया। उसका दिमाग उसने निकाल लिया। फिर उस 'वह' के माथे की खोली उसने खोल दी। उसके भीतर उसने बन्दर का दिमाग भर दिया। खड़ी के प्लास्टर से उसने माथे को पन्द्रह दिनों तक बांध रक्खा। तब वह बिछावन छोड़ कर उठ पड़ा। तब एक विषम

स्थिति उत्पन्न हो गयी। जिसे ही देख लेता था उसकी तरफ दाँत निपोर कर चीखने लगता था। नर्स भाग खड़ी हुई। डाक्टर साहब ने कड़ी मुट्ठी से उसकी दोनों हाथ पकड़ रक्खे और ऊँचे स्वर से बोले—स्थिर होकर वहाँ बैठे रहो। वह हुँकार तो समझ गया, किन्तु भाषा उसकी समझ में नहीं आई। वह कुर्सी पर बैठना नहीं चाहता था, उछल कर टेबिल पर बैठना चाहता था। किन्तु उछल न सका। फर्श पर गिर पड़ता था। दरवाजा खुला था, बाहर एक पीपल का पेड़ था। सबके हाथ से बचकर वह उसी पेड़ की तरफ दौड़ पड़ा, उसने सोचा कि एक ही उछाल में वह पेड़ की डाल पर चढ़ जायगा। बार-बार उछाल लगाता रहा, किन्तु डाल तक न पहुँच कर गिर-गिर पड़ता था। समझ ही न सका कि किस कारण असमर्थ हो रहा है। उसका कूदना देख कर मेडिकल कालेज के लड़के ठठाकर हंसने लगे वह दाँत निपोर कर उन्हें खदेड़ने लगता था। एक फिरङ्गी लड़का पेड़ के नीचे पैर पसारे बैठा हुआ गोद में रूमाल लेकर रोटी पकवन और केले से खा रहा था, वह हठात् उसके पास चला गया, उसका केला छीन कर खाने लगा, लड़का कुपित होकर उसे मारने को दौड़ा, मित्रों की हँसी रुकती ही नहीं थी।

बड़ी चिन्ता पड़ गई कि उसका दायित्व कौन लेगा? किसी ने कहा कि इसे चिड़ियाखाने में भेज दो, किसी ने कहा अनाथ आश्रम में भेजो, चिड़ियाखाने के प्रबन्धकों ने कहा कि यहाँ मनुष्य-पालन करने के लिए हमें खर्च नहीं मिलता। अनाथ आश्रम के अध्यक्षने कहा—यहाँ बन्दर पालने का नियम नहीं है।

\+ \+ \+

"दादा जी, तुम रुक क्यों गये?"

"दीदी जी, संसार में सबको अन्त में रुकना ही होता है।"

"नहीं, किन्तु यह तो रुकना अभी नहीं हुआ। केला छीन कर सभी खा सकते हैं।"

"अच्छा, कल और होगा, आज काम है।"

"कल क्या होगा ? बताओ न थोड़ा कुछ।"

"जानती ही हो, उसके ब्याह की बातचीत पहले ही हो चुकी थी। उसका दिमाग बदल गया है, यह खबर कन्या के घर अभी नहीं पहुँची थी, दिन और लग्न ठीक था, वर के फूफा उसे दो भाड़ केले खिला करके ब्याह के स्थान पर ले गये। उसके बाद ब्याह के स्थान में जो लीला हो गयी, यदि अच्छी तरह बताया जाय तो तुम ही कहोगी कि यह कहानी, कहानी की तरह हुई है। इसके बाद उसे मार डालने की जरूरत न पड़ेगी। वह मृत्यु से बड़ी बात होगी।

\+ \+ \+

सन्ध्या का समय था, छत पर मैं बैठा हुआ था। दक्षिणी हवा चल रही थी। आकाश में शुक्ल चतुर्थ का चन्द्रमा उगा हुआ था। पूपू दीदी आकन्द की माला गूंथ कर एक कांच के पात्र में ले आयी। कहानी सुनाना समाप्त हो गया है बख्शीश मिलेगी।

ऐसे ही समय में हांफते-हांफते वह आ धमका। बोला—"आज से मैं अपने काम से स्तीफा दे रहा हूँ। मुझे लेकर तुम गल्प रचना नहीं कर सकते। तुमने पातू गंजेड़ी का शरीर मुझे पहना दिया था, उसे भी मैंने सह लिया। अन्त में तुमने मेरे दिमाग में बन्दर का दिमाग ठूस दिया यह मुझसे सहा न जायगा। अन्त में यह भी सम्भव है कि तुम मुझे चिमगादड़, बिषतोइया या गुलरौरा का कीड़ा बना दोगे। तुम्हारे लिए कोई भी कर्म असाध्य नहीं है। आज आफिस

में जाकर आराम कुर्सी पर जा बैठा। वहाँ मैंने देखा कि डेस्क पर केलों की झबरी पड़ी हुई है। स्वाभाविक अवस्था में केला खाना पसन्द करता हूँ, किन्तु अब से मुझे केला खाना छोड़ ही देना पड़ेगा। पुपू दीदी, इसके बाद तुम्हारे दादा जी मुझे लेकर ब्रह्मदैत्य या कन्ध कांटा बना दें तो, अखबार में न छपने दें, यही मैं चाहता हूँ, कन्या के अभिभावक मेरे घर आये थे, ब्याह में अस्सी भर सोना देने की बात थी। एकदम तेरह भरी पर उतर आये हैं। वे लोग समझ गये हैं कि इसके बाद मेरे भाग्य में कन्या मिलना कठिन होगा। मैं अब बिदा ले रहा हूँ।"



११

सन्ध्या के समय दक्खिन तरफ की छत पर बैठा हुआ था। सामने पुराने जमाने के कुछ पुराने सिरिस वृक्ष खड़े थे और अपनी आड़ से आकाश के तारों को कुछ छिपाये हुए मानों जुगुनुओं के प्रकाश से सौ नेत्रों से मीच मीचकर इशारा कर रहे थे।

पूपे दीदी से मैंने कहा—"तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त पक्की हो उठी है, इस कारण मैं सोच रहा हूँ कि आज तुमको याद दिलाऊँ कि किसी दिन तुम निरी बच्ची थी।"

दीदी हँसने लगी। बोली—"यहीं तुम्हारी जीत है। तुम भी किसी दिन शिशु थे यह बात स्मरण करा देने का उपाय मेरे हाथ में नहीं है।"

मैंने लम्बी साँस लेकर कहा—"सम्भवत: आज किसी के भी हाथ में नहीं है। मैं भी शिशु था इसका एक मात्र साक्षी आकाश के वे तारे हैं। मेरी बात तुम छोड़ ही दो, मैं तुम्हारे एक दिन के लड़कपन की बात कहूँगा। तुमको वह अच्छी लगेगी या नहीं, मैं नहीं जानता, मुझे वह मीठी लगेगी।"

"अच्छा सुनाओ।"

"सम्भवत: फागुन का महीना आ गया था। उसके पहले ही कई दिनों से उस गंजे किशोरी चट्टोपाध्याय से तुम रामायण की कथा सुन रही थी। मैं प्रातःकाल चाय पाते-पीते अखबार पढ़ रहा था। तुम आँखों में दुःख का भाव लिये आ गयी मैंने पूछा—"क्या हुआ है?"

हाँफते-हाँफते तुमने कहा—"मुझे हरण कर लिया गया है।"

"कैसा अनर्थ है! किसने यह काम किया?"

"इस प्रश्न का उत्तर अभी तुम्हारे दिमाग में आया नहीं था। तुम कह सकती थी कि रावण ने। किन्तु यह कथन सच न होगा यह सोचकर तुमको संकोच हो रहा था। क्यों कि पूर्ववर्ती सन्ध्या को ही रावण युद्ध में निहत हो चुका था, उसका एक भी मस्तक बचा नहीं था। उपाय न देख कर तुम जरा ठिठक गयीं, बोली—उसने मुझे कहने का निषेध किया है।"

"तभी तो तुमने विपद खड़ी कर दी। अब तुम्हारा उद्धार कैसे किया जाय? किस तरफ वह तुमको ले गया।"

"वह एक नया देश है।"

"खान्देस तो नहीं है?"

"नहीं।"

"बुन्देल खण्ड तो नहीं है?"

"नहीं।"

"वह देश कैसा है?"

"वहाँ नदियाँ है, पहाड़ हैं, बड़े-बड़े-वृक्ष हैं। कुछ अँधियारी है।"

"ये सब तो बहुत देशों में हैं। राक्षस की भाँति वहाँ कोई दिखाई पड़ा था? जीभ निकाले काँटेदार?"

"हां हां, वह एक बार जीभ निकाल कर ही फिर कहीं गायब हो गया।"

"उसने तो बड़ा ही धोखा दिया। नहीं तो मैं उसका झोटा पकड़ लेता जो कुछ भी हो किसी न किसी सवारी में ही तो तुमको ले गया था? रथ में?"

"नहीं।"

"घोड़े पर?"

"नहीं।"

"हाथी पर?

"नहीं?

"झट से तुम बोल उठी—"खरगोश पर।" उस जानवर की बात खूब याद पड़ रही है। जन्म दिवस को एक जोड़ा बाबू जी से तुमको मिला था।"

मैंने कहा—"तब तो चोर कौन है, यह बात मालूम हो गयी।"

मुसकुराकर तुमने कहा—"बताओ तो।"

"निस्सन्देह यह चन्दा मामा का काम है।"

"तुम कैसे जान गये।"

"उसको भी तो बहुत दिनों का नशा है खरगोश पालन का।

"उसको खरगोश कहां मिला था?"

"तुम्हारे बाबू जी ने नहीं दिया था।"

"तो किसने दिया था?"

उसने ब्रह्मा के चिड़िया खाने में घुस कर चोरी की थी।

"छिः।"

"छीः तो जरूर है। इसी लिए उसके शरीर में कलंक लगा है।

"ब्रह्मा ने दाग लगाया है।"

"अच्छा हुआ है।"

"किन्तु सीख कहां मिली। फिर तुमको भी उसने चुरा लिया। शायद वह तुम्हारे ही हाथ से अपने खरगोश को फूल गोभी का पत्ता खिलायेगा।"

यह सुन कर तुम खुश हो गई। मेरी बुद्धि की परख करने के लिये तुमने कहा—"अच्छा, बताओ तो, खरगोश कैसे मुझे पीठ पर ले गया था?"

"निश्चय ही उस समय तुम नींद में सोई पड़ी थी।"

"सोये रहने से क्या मनुष्य हलका हो जाता है!"

"जरूर हो जाता है। तुम कभी सोते समय उड़ी नहीं हो?"

"हां, उड़ी तो थी।"

"तो फिर कठिन क्या है? खरगोश तो सहज है, इच्छा करने से वह मेढक की पीठ पर तुमको चढ़ाकर और सारे मैदान में मेढक की तरह फुदका-फुदका कर तुमको घुमा सकता था।"

"मेढक! छिः छिः छिः, सुनने से शरीर कैसा सिहर उठता है!"

"नहीं, भय की बात नहीं है—मेढक की उत्पत्ति चांद के देश में नहीं है। मैं एक बात पूछता हूँ, राह के मेढक दादा लोगों से तुम्हारी मुलाकात कभी नहीं हुई?"

"हां, हुई तो थी!"

"कैसी थी।"

"महुए के वृक्ष के ऊपर से नीचे आकर वह खड़ा हो गया। बोला—पूपे दीदी को कौन चुरा ले गया है। सुनते ही खरगोश ऐसा दौड़ने लगा कि, मेढक दादा उसको पकड़ ही न सका—अच्छा, उसके बाद?"

"किसके बाद ?"

"खरगोश तो ले गया, उसके बाद क्या हुआ बताओ न।"

"मैं क्या कहूँ। तुमको ही तो कहना पड़ेगा।"

"वाह मैं तो सो पड़ी थी। कैसे जान जाती ?"

"यही तो मुश्किल है। मुझे पता नहीं लगता कि तुमको कहाँ ले गया था। किस रास्ते से उद्धार करने जाऊं ? मैं एक बात पूछता हूँ, रास्ते से तुम्हें ले जा रहा था, उस समय तुमको क्या घण्टा सुनाई पड़ रहा था ?"

'हाँ, हाँ, सुनाई पड़ रहा था—ढं ढं ढं।"

"तो यह ठीक है कि रास्ता सीधा चला गया है घण्टाकर्णों के मुहल्ले से।"

"घण्टाकर्ण ! वे लोग कैसे हैं ?"

"उनके दो कान होते हैं, दोनों ही घण्टे के समान। और दो पूछें रहती हैं, दोनों में हथौड़ियां हैं। पूंछ के झपेटे से एक बार इस कान में बजाते हैं ढं, फिर दूसरे कान में बजाते हैं ढं। घण्टाकर्णों की दो जातियाँ हैं। एक जाति के हिंस हैं, उनसे खन्, खन् आवाज कांसे की तरह निकलती है, दूसरी जाति से गम्, गम् गम्भीर शब्द निकलती है।"

"तुमको कभी उनकी आवाज सुनाई पड़ती है दादा जी ?"

"जरूर सुनाई पड़ती है। अभी तो कल ही रात को मैं पुस्तक पढ़ रहा था कि अकस्मात् सुनाई पड़ा घण्टाकर्ण घोर अँधियारी में चले जा रहे हैं। जब उन्होंने बारह बजा दिये तब मैं स्थिर न रह सका। झटपट पुस्तक छोड़ कर दौड़ता हुआ बिस्तरे पर चला गया।

तकिये के नीचे मुंह छिपा कर आँखों को बन्द किये चुपचाप लेट गया।"

"खरगोश के साथ घण्टाकर्णा का मेल-जोल है।"

"खूब मेल-जोल है। खरगोश उसकी ही आवाज की तरफ कान लगाये सप्तर्षि टोले के छाया-पथ से चला जाता है।"

"उसके बाद?"

"उसके बाद जब एक बजता है, दो बजते हैं, तीन बजते हैं, चार बजते हैं, पाँच बजते हैं, तब रास्ता खत्म हो जाता है।"

"उसके बाद?"

"उसके बाद तन्द्रा-बृहत् मैदान के उस पार प्रकाशमय देश में पहुँच गया फिर दिखाई नहीं पड़ा।"

"मैं क्या उस देश में पहुँच गयी हूँ?"

"अवश्य ही पहुँच गयी हो।"

"मैं क्या इस समय खरगोश की पीठ पर नहीं हूँ?"

"रहने से तो उसकी पीठ टूट ही जाती।"

"ओः मैं भूल गयी हूं, अब तो भारी हो गयी हूँ। उसके बाद?"

"उसके बाद तुम्हारा उद्धार तो करना चाहिये।"

"निश्चय करना चाहिये। कैसे करोगे?"

"वही बात सोच रहा हूँ। राजकुमार की शरण लेनी पड़ेगी देखता हूँ।

"कहां उनको पाओगे?"

"वही तो तुम्हारे सुकुमार हैं।"

सुन कर एक क्षण में तुम्हारा मुंह गम्भीर हो उठा। जरा कठोर

स्वर में तुमने कहा—तुम उसको खूब प्यार करते हो। तुमसे वह पाठ सीखने आया करता है। इसीलिए वह हिसाब में मुझसे आगे चला जाता है।"

"आगे चले जाने का दूसरा स्वाभाविक कारण भी है। उस बात की मैंने आलोचना नहीं की है। मैंने कहा है कि उसे मैं प्यार करूँ या न करूँ, वही है एक राजकुमार।"

"तुम कैसे जान गये?"

"मेरे साथ समझौता करके उसने उस पद को पक्का कर लिया है।"

"तुमने अपनी भौंहें अधिकतर सिकोड़ कर कहा—तुम्हारे ही साथ उसका समझौता है?"

"मैं क्या करूँ बताओ? किसी तरह भी वह मानना नहीं चाहता—उससे उम्र में बहुत बड़ा हूँ।"

"तुम उसको राजकुमार कहते हो, पर मैं तो उसको जटायु पक्षी भी नहीं समझती। खूब तो।"

"जरा शान्त हो रहो, अभी घोर विपद में हम पड़ गये हैं। तुम कहाँ हो, इसका तो ठिकाना ही नहीं है। तो इस बार के लिए हमारा कार्योद्धार कर दें। हम सांस लेकर बच जायं। इसके बाद सेतुबन्धन की गिलहरी बना दूँगा।"

"उद्धार करनेको वह क्यों राजी होगा? उसको परीक्षा के पाठ तैयार करने हैं।"

× × ×

राजी होने की आशा बारह आने है। अभी परसों ही मैं उन लोगों के यहां गया था। तीन बज गये थे, मैंने देखा कि उस धूप में

मां को धोखा देकर वह मकान की छत पर चहल-कदमी कर रहा है। मैंने पूछा—बात क्या है?

शरीर झकझोर अपना सिर ऊपर उठा कर वह बोला—मैं राज-कुमार हूँ।

"तलवार कहाँ है?"

दीवाली की रात को उनकी छत पर अतिशबाजी की एक काणी गिर पड़ी थी। उसी को एक फीते से उसने कमर में बांध रक्खा था, मुझे उसने दिखा दिया।

मैंने कहा—"तलवार ही तो है। किन्तु घोड़ा भी तो चाहिये?"

वह बोला—"अस्तबल में है।"

यह कह कर वह छत पर चला गया। वहाँ एक कोने में बड़े चाचा जी का बहुत दिनों का एकदम पुराना फटा हुआ छाता ले आया। अपने दोनों पैरों के बीच उसे दबा कर हट् हट् आवाज करता हुआ समूची छत पर दौड़ लगाने लगा। मैंने कहा—"यह जरूर ही घोड़ा है!"

"उसके पक्षीराज का चेहरा देखना चाहते हो?"

"जरूर देखना चाहता हूँ?"

छाते को उसने झट से खोल दिया, छाते के भीतर घोड़ा के लिए दाना था। वह छत पर बिखर पड़ा।

मैंने कहा—"आश्चर्य है! क्या ही आश्चर्य है! किसी दिन मैंने आशा नहीं की थी कि इस जन्म में पक्षीराज को कभी देख सकूंगा।

"अब तो मैं उड़ रहा हूँ दादा जी तुम अपनी आँखें बन्द कर

लो, तभी समझ जाओगे कि मैं उस बादल के पास पहुँच गया हूँ। एकदम अन्धेरा है।"

"आँखें बन्द करने की मुझे जरूरत नहीं पड़ती, स्पष्ट ही मैं जान सकता हूँ कि तुम खूब उड़ रहे हो, पक्षीराज के पङ्ख बादलों में खो गये हैं।"

"अच्छा दादा जी, मेरे घोड़े का एक नाम रख दो।"

मैंने कहा—"छत्रपति।"

नाम पसन्द था, राजकुमार ने छाते की पीठ पर थपकी लगा कर बोला—"ऐ छत्रपति।"

खुद ही घोड़े की तरफ से उसने जवाब दिया—"जी सरकार!"

मेरे देह की तरफ देख कर बोला—"तुम समझते हो मैं बोलता हूँ। मैं तो नहीं, घोड़ा बोला है।"

"क्या यह बात भी मुझे कहने की जरूरत पड़ेगी? मैं क्या इतना गूंगा हूँ।"

राजकुमार बोला—"छत्रपति चुपचाप पड़ा रहना अब अच्छा नहीं लगता।"

उत्तर मिला—"क्या हुकुम बताओ?"

"बहुत बड़े मैदान को पार करना होगा।"

"मैं राजी हूँ।"

मुझसे रहा नहीं गया।

रस में भंग देकर कहना पड़ा "राजकुमार, किन्तु तुम्हारा मास्टर तो बैठा हुआ है। मैं देख आया हूँ कि उसका मिजाज बिगड़ा हुआ है।"

सुन कर राजकुमार का मन छटपटाने लगा, छाते को थप्पड़ लगा कर बोला—"क्या इसी क्षण मुझे तुम उड़ा कर नहीं ले जा सकते?"

बेचारे घोड़े की ओर से अब मुझे ही कहना पड़ा—"जब तक रात न होगी तब तक तो वह उड़ ही न सकेगा। दिन के समय वह अनजान बन कर छाता ठीक करने में लगा रहता है, तुम जब सो रहोगे, तब वह पंख फैला कर उड़ेगा। अभी तो तुम पढ़ने जाओ नहीं तो आफत आ जायगी।"

सुकुमार मास्टर के पास पढ़ने चला गया जाते समय उसने मुझसे कहा—"किन्तु सभी बातें अभी समाप्त नहीं हुई हैं।"

मैंने कहा—"बातें क्या कभी समाप्त हो सकती हैं। समाप्त होने से मजा ही क्या रहेगा?"

"पांच बजे पढ़ाई समाप्त हो जायगी। दादू, तब तुम आजाना।"

मैंने कहा—"थर्ड नम्बर रीडर के बाद स्वाद बदलने के लिये प्रथम नम्बर की कहानी चाहिये। निश्चय ही मैं आऊँगा।"



१२

मैंनें देखा कि मास्टर साहब गली के मोड़ पर, ट्राम की इन्तजार में खड़े हैं। जिस समय मैं सुकुमार के मकान की छत पर गया, उस समय साढ़े पांच बज चुके थे। सामने जो तिमंजिला मकान है, उसे दिन ढलने के समय की धूप ने आड़ में कर दिया था। जाते ही मैंने देखा कि ऊपरी ओसारे के सामने सुकुमार चुप चाप बैठा हुआ है। उसका छत्रपति कोने में विश्राम कर रहा है। जब मैं पिछली सीढ़ियों से ऊपर चढ़ गया तब भी मेरे पैरों की आहट उसके कानों में नहीं पहुँची। थोड़ी ही देर में मैंने पुकारा—"राजकुमार!" उसका सपना मानों टूट गया। वह चौंक उठा।

मैंने पूछा—"यहां बैठे क्या कर रहे हो भाई?"

वह बोला—"शुक-सारिका वार्तालाप सुन रहा हूँ।"

"शुक-सरिका से मुलाकात कहां हुई?"

"वह देखो पहाड़ के ऊपर जंगल है। वृक्षों की डालों पर फलों की भरमार है पीले, लाल, नील वर्ण के--सन्ध्याकाल के बादल सरीखे।

उनके ही भीतर से शुक-सारिका की बोली सुनाई पड़ रही है।"

"उनको तुम देख रहे हो।"

"हां, देख रहा हूँ, कुछ दिखाई पड़ता है, कुछ ढँका हुआ है।"

"वे लोग क्या कह रहे हैं?"

अब तो हमारा राजकुमार फेर में पड़ गया। तुतलाते-तुतलाते बोला—"तुमही बता दो न दादू वे लोग क्या कह रहे हैं।"

"साफ तो सुनाई पड़ रहा है, वे तर्क कर रहे हैं।"

"कैसा तर्क?"

"शुक कह रहा है, अब तो मैं उड़ूँगा। सारिका कहती है—कहां उड़ोगे? शुक कहता है—जहां कहीं भी कोई चीज नहीं है, केवल उड़ना ही है। तुम भी मेरे साथ चलो। सारिका ने कहा—मैं तो इस जंगल को प्यार करती हूँ। यहां डाल-डाल पर झूमकलता लिपटी हुई है, यहां बर के पेड़ हैं, जिनमें फल लदे हुए हैं, कौओं के साथ झगड़ा करके उनका मधु चटना मुझे अच्छा लगता है। यहां रात के समय जुगनू 'कमड़गे' के झोपों पर छा जाते हैं, और बादलो से वर्षा की झड़ियां झरती रहती हैं, तब नारियल वृक्षों की डालियां झर झर शब्द करती झूमने लगती हैं—"परन्तु तुम्हारे आकाश में क्या है?" शुक बोला—"मेरे आकाश में प्रातःकाल है। सन्ध्याकाल है, आधीरात के तारे हैं, दक्षिणी वायु यातायात है, और कुछ भी नहीं है—कुछ भी नहीं है।"

सुकुमार ने पुछा—"कुछ भी नहीं रहता है यह कैसे हो सकता है दादू?

"वही प्रश्न तो अभी सारिका ने शुक से पुछा है।"

"शुक ने क्या कहा है?"

"शुक ने कहा है—आकाश का सर्वापेक्षा अमूल्यधन है वही 'कुछ

भी नहीं।' वहीं कुछ भी नहीं, मुझे भोर बेला में बुलाता है। उसके लिये मेरा मन उदास हो जाता है जब कि मैं जंगल में घोंसला तैयार कर लेता हूँ। वही 'कुछ भी नहीं' केवल रंगों का खेल नीले आँगन में खेलता है। माघमास के अन्त में आम के बौरों के निमंत्रण पत्र उसी कुछ भी नहीं का ओढ़ना ओढ़े 'हुहु' शब्दों के साथ उड़ते हुए आ जाते हैं। खबर पाकर मधुमक्खियाँ चंचल हो उठती हैं।"

सुकुमार उत्साहित होकर उछल कर खड़ा हो गया, बोला—"मुझे अपने पक्षीराज को उसी 'कुछ भी नहीं' के मार्ग से चलना पड़ेगा।"

"निश्चय ही। पूपू दीदी का हरण काण्ड आद्यन्त ही उसी कुछ भी नहीं के वृहत् मैदान में है।"

सुकुमार ने हाथों की मुट्ठी बाँधकर कहा—"उसी स्थान से मैं उसको लौटा लाऊँगा, निश्चय लाऊँगा।"

\+ \+ \+

"तुम तो समझ गयी न पूपू दीदी—राजकुमार-तैयार ही है। तुम्हारा उद्धार करने में देर न लगेगी। अब तक छत के ऊपर उसका घोड़ा अपने पंख बार बार खोलता है, और बन्द करता है।"

तुम खूब उत्तेजित हो उठी बोली—"जरूरत नहीं है।"

"यह क्या कहती हो, इतनी बड़ी बिपद से उद्धार नहीं हुआ, और हम भला निश्चिन्त रहेंगे?"

"उद्धार हो गया है।"

"कब हो गया?"

"तुमने नहीं सुना? थोड़ी ही देर पहले घण्टाकर्ण मुझे यहाँ लौटा गया है।"

"यह घटना कब हुई?"

"जब उसने ढं ढं करके नौ बजा दिये।"

"वह किस जाति का घंटाकर्ण है?"

"हिंस्र श्रेणी का है। अब स्कूल में जाने का समय है निकट उसकी आवाज भद्दी सुनाई पड़ती है।"

\+ × +

कहानी असमय में ही टूट गई। कोई दूसरा राजकुमार ढूँढ लाना उचित था। यह तो अङ्कों को घटाना जोड़ना नहीं है। क्लास-पार न करने वाला लड़का वृहत् मैदान पार करने की स्पर्धा करेगा, इसे तुम किसी तरह भी सह न सकीं। मैंने मन ही मन ठीक कर रक्खा था कि एक लाख झींगुर मँगाऊँगा। हमारी पोखरी के किनारे जो जंगल है उसमें बहुत से रहते हैं। वहीं से मँगाना चाहता था। वे चंदामामा के महल की पश्चिम तरफ के पिछवाड़े के दरवाजे से झुण्ड-झुण्ड में घुस पड़ते और सब मिलकर तुम्हारे बिछौने को सुड़ सुड़ाहट भरी आवाज के साथ खींचने लगते। उसके ऊपर तुमको उतार लाते। उनकी 'झींझीं' आवाज सुनकर चन्द्रमा का पहरेदार चाँदनी चौक में ऊँघने लगता है। समूचे मार्ग में जुगनुओं के प्रकाशधारी दल को मैंने बयाना दे रक्खा था। बासों की झाड़ी के निचले भाग की टेढ़ी गली से तुमको ले चलते। और सूखी पत्तियाँ खस् खस् शब्दों के साथ झरने लगतीं। नारियल वृक्षों की डालियाँ झर-झर झरती रहतीं। गन्ध से भरे सरसों के खेतों के डाँड़ से जब तिरपूर्ण के घाट पर पहुँचते, तब दौरी में भारी धान का लावा लेकर मैं गंगामैया के सूँड़ ऊपर उठाये हुए घड़ियाल को बुला लेता। उसकी पीठ पर तुमको मैं चढ़ा देता। उसकी पूँछ का धक्का लगने से दायीं बायीं तरफ जल कल्लोल करने लगता। रात के तीसरे पहर को सियार किनारे जमीन पर खड़े होकर पूछने लगते—'क्या हुआ', 'क्या हुआ।'

मैं कहता—चुप रहो, कुछ नहीं हुआ। इस यात्रा के पथ में उल्लुओं और चिमगादड़ों के साथ भी कुछ अपना मेल-समझौता करने की बात तै थी। उनको मैं काम में लगा देता। भोर में साढ़े चार बजे पश्चिमी आकाश में शुक्रतारा उतर पड़ता। पूरब के आकाश में प्रकाश की रेखा में प्रभात काल की तर्जनी में सोने की अँगूठी से छिटकने वाला संकेत दिखाई पड़ता, सद्य जाग्रत कौआ इमली वृक्ष की डाल पर बैठ कर अस्थिर हो कर प्रश्न करता—का—का? ज्यों ही मैं कहता 'कुछ नहीं' त्यों ही देखते-देखते सब लुप्त हो जाता—तुम अपने बिछावन पर जाग उठती।"

+ + ×

पूपू दीदी ने जरा हँस कर कहा—"यह जो मेरे लड़कपन की कहानी सुनी गयी—इसको इतनी समझ बूझ के साथ कहने से तुमको क्या आनन्द मिला? मेरा स्वभाव हिंसक था, यही बता देने के लिए तुम्हारा इतना उत्साह है! और अपने विलायती आमड़ा वृक्ष के पक्के अमड़े तोड़ कर सुकुमार भैया को छिपेतौर से दे आती थी वह आमड़ा पसन्द करता है, इसीलिए। चोरी का आरोप मेरे ऊपर होता, और फलोपभोग करता वह, यह बात दब गयी है। सुकुमार दादा अङ्कगणित का हिसाब ही अच्छा लगाता था, किन्तु मुझे अच्छी तरह याद है, एक दिन वह 'अवधान' शब्द का अर्थ बता न सका, मैंने स्लेटपर लिख कर आड़ में छिपा कर उसे दिखा दिया था—ये बातें क्या तुम्हारी कहानी में नहीं पड़तीं।"

मैंने कहा—मेरी खुशी का कारण यह नहीं है कि अपने मन की चलन से तुमने सुकुमार दादा का युवराज पद मान लेना नहीं चाहा। इसके अतिरिक्त डाह करने का तुम्हारे लिये कारण यह था कि मेरे प्रति तुम अनुराग रखती हो—मेरे आनन्द की स्मृति वहीं मौजूद है।"

"अच्छा, तुम अपना अहंकार लिये रहो ? एक बात मैं तुमसे पूछती हूँ। वह जो नामहीन तुम्हारा मनुष्य था। जिसे तुम 'वह' कह कर पुकारते थे, उसका क्या हुआ ?"

मैंने कहा—"उसकी उम्र बढ़ गयी है।"

"यह तो अच्छा ही है।"

"अब वह सोचता है, उसके मस्तिष्क में अमरों ने लेप बाँध दिया है। तर्क में उसके साथ पार पाने का उपाय नहीं है।"

"देखती हूँ कि वह मेरे साथ ही समान्तर लाइन में चल रहा है।"

"हो सकता है। किन्तु कहानी के हलके को पार कर गया। जब तक मुट्ठी बाँध कर वह बोला उठता है—महान् बनना पड़ेगा।"

"कहने दो न। कड़े साँचे में ही कहानी जम जाने दो न। चाट कर भले ही न खा सकें, चबा कर खाना तो चल सकेगा। शायद मुझे पसन्द होगी।"

"पीछे कहीं अक्ल के दांत के अभाव में उसको वश में न कर सको इसी डर से बहुत दिनों से उसे चुप रहने दिया है।"

"ओः! तुम्हारी यह भावना देख कर हँसी आती है। तुमने ठीक कर रक्खा है, मेरी अवस्था यथेष्ट नहीं हुई है।"

"राम राम! इतनी बड़ी निन्दा अत्यन्त बड़ा शत्रु भी नहीं कर सकता।"

"तो उसको अपनी बैठक में बुलाओ न उसका वर्तमान स्वभाव समझलूँ।"

"यह ठीक है।"



१३

झगड़ू से मैंने कहा—"वह बन्दर कहाँ है। जहाँ भी मिले, उसे बुला लाओ।"

"वह" गुलाब की जड़ की काँटेदार लाठी ठक् ठक् करता हुआ आने गया। काछा कस कर धोती पहने था, कमर में चादर लपेटे था। घुटा तक काले ऊन का मोजा लाल डोरियादार कुरते के ऊपर बाँह बिही बनात का वेष्टकोट था। माथे पर सफेद रोएँ वाली रूसी टोपी थी—जोन पुराने माल की दूकान से खरीदी गई थी। बायें हाथ के अँगूठे में लत्ता लपेटा हुआ हुआ था—जो किसी गहरे घाव का प्रत्यक्ष साक्षी सरीख था। काले चमड़े के जूते की मच मच आवाज गली के मोड़ से सुनाई पड़ रही थी। दोनों घनी भौंहों के नीचे दोनों आँखें मंत्र द्वारा रोकी हुई दो गोलियों सी जान पड़ती थीं।

वह बोला—"क्या हुआ है। सूखी मटर दाना चबा रहा था दांतों को मजबूत बनाने के लिये। तुम्हारे झगड़ू ने मुझे छोड़ा ही नहीं। बोला—बाबू की दोनों आँखें लाल हो गयी हैं, शायद डाक्टर बुलाना पड़ेगा। सुनते ही झट पट ग्वाले के घर से एक हांड़ी चूना ले आया हूँ।

दोनों में लेकर एक-एक बूँद आँखों में डालते रहो, साफ हो जायँगी।"

मैंने कहा—"जब तक तुम मेरे आस पास कहीं भी रहोगे, मेरे नेत्रों की लाली किसी तरह भी न कटेगी। भोर बेला से ही तुम्हारे मुहल्ले के मुखिया लोग मेरे दरवाजे पर धरना देकर जुटे हुए हैं।"

"कारण क्या है ? ।"

"तुम्हारे रहते अन्य कारण की जरूरत नहीं है। खबर मिली है कि तुम्हारा चेला कंसारी मुंशी—जिसका मुँह देखने से ही यात्रा नष्ट हो जाती है, तुम्हारी छत पर बैठ कर एक सिंघा बाजा लेकर फूँक लगा रहा है। और गाँजे का लोभ दिखाकर फटे गले की समूची फौज को एकत्र कर लिया है। वे लोग जी जान से चिल्लाने का अभ्यास कर रहे हैं।—भले आदमियों का कहना है कि या तो वे मुहल्ला तोड़ देंगे, या तुमको ही छोड़ देने को बाध्य करेंगे।"

वह उत्साह से उछल उठा और चिल्ला कर बोला—"प्रमाण मिल गया।"

"कैसा प्रमाण ? बेसुर का दुस्सह जोर एक दम डाइनामाइट। बेसुर के भीतर से दुर्जय वेग छूट गया है, मुहल्ले की नींद उड़ गयी है। प्रचण्ड आसुरिक शक्ति है। स्वर्ग के भले आदमियों को एक दिन इसके धक्के का पता लग गया था। अधमुँदी आँखों से अमृत पी रहे थे। गन्धर्व उस्ताद लोग कंधे पर तम्बूरा लेकर, विशुद्ध स्वर से परज-वसन्त तान छेड़ रहे थे, और नूपुर-झंकरिणी अपसरायें ताल पर नाच रही थीं। इधर असुर दल मृत्यु वरण नीले अन्धकार में तीन युगों से लगातार-रसातल कोठे पर तिमि मत्स्य की पूँछ से बेसुर की साधना कर रहा था। अन्त में एक दिन शनि और कलि ने परस्पर मिल कर सिग्नल दे दिया, बेसुर-समाज का कालापहाड़ी दल आ गया।

आकर वे सुरवालों की काम से हिलती हुई गरदन पर हुँकार, क्रुंकार, भ्रुमकार, भ्रन् भ्रन्कार,धुड़मकार, गड़गड़त्कार शब्दों के साथ टूट पड़े। तीव्र बेसुरवालों की तेल में भुने जानेवाले-भंटे की जलन से वे लोग हे पितामह. हे पितामह चिल्लाते हुए ब्रह्मणी के अन्दर महल में जा घुसे। तुमको मैं और क्या बताऊँ, तुम तो सभी शास्त्रों को जानते हो।"

"मैं नहीं जानता, यह बात आज तुम्हारी बात सुनने से मालूम हो गयी।"

"दादा, तुम्हारी विद्या पुस्तकें पढ़ कर प्राप्त हुई है, असल खबर तुम्हारे कानों में नहीं पहुँचती। मैं एक, श्मशान से दूसरे श्मशान में घूमता फिरता हूँ, साधकों से मुझे गूढ़ तत्व प्राप्त होता है। मैं बहुत दिनों तक मेरेएडा के विरेचक तेल की मालिश अपने गुरु के पैरों पर करता रहा, और उत्कटदन्ती उस गुरु की मुख-कन्दरा से बेसुर तत्व कुछ जान गया था।

"बेसुर-तत्व सीख लेने में तुमको देर नहीं लगी यह तो मैं समझ गया। मैं अधिकार भेद मानता हूँ।"

"दादा, वही तो मेरे लिये गर्व की बात है। पुरुष रूप में जन्म लेने से ही कोई पुरुष नहीं होता, पौरुष को प्रतिज्ञा रहनी चाहिये। एक दिन मेरे गुरु के अति कुश्री मुख से —

"गुरुमुख को हम श्री मुख कहा करते हैं, तुम कहते हो कुश्रीमुख गरु का आदेश है। उन्होंने कहा कि श्रीमुख शब्द नितान्त स्त्री विरचित है, कुश्री मुख से ही पुरुष का गौरव व्यक्त होता है। उसका जोर आकर्षण का नहीं है, विप्रकर्षण का है। तुम मानते हो या नहीं।

"जो अभागा मानलेने को बाध्य होता है, वह तो जरूर मान लेता है।"

"मधुर रस से तुम्हारा मिजाज पक्का हो गया है दादा, कठोर सत्य मुँह में नहीं रुचता, तुम लोगों की यह दुर्बलता बढ़ा देने की जरूरत है—मीठे सुर से जिसका नाम तुमने सुरुचि रक्खा है, जिसे कुश्री को सहलेने की शक्ति नहीं है।"

"दुर्बलता को तोड़ देना सबलता को तोड़ देने की अपेक्षा कठिन नहीं है। तुमने कुश्री तत्व का गुरुवचन सुनाना चाहा था, सुना दो।"

"गुरु ने एक दम आदिपर्व से अपना व्याख्यान शुरू किया। उन्होंने कहा—चतुर्मुख ने मानव-सृष्टि के प्रारम्भ में अपने सामने के दाढ़ी कमाये हुए दो मुखों से महीन सुर निकाला। कोमल रेखा से चलकर मधुर धारा के चिकने मीड़ के ऊपर से सरक कर वह कोमल निरवाद तक लुढ़कता चला आया। उस सुकुमार स्वरलहरी ने प्रात:कालके मेघसे प्रतिफलित होकर अत्यन्त आराम का झूला अतिशय मीठी हवा में लगा दिया। उसके ही मृदु हिल्लोल से झूलते हुये नृत्यछन्द से रूप लेकर नारी प्रकट हुई। तब स्वर्ग में वरुणदेव की घरनी शंख बजाने लगी।"

"वरुणदेव की घरनी क्यों?"

"वे हैं जलदेवी, नारी जाति विशुद्ध जलीय है। उसमें कठोरता नहीं है, चंचलता है, ? भूमि व्यवस्था के प्रारम्भ में जलराशि है। उसी जल में 'पान कौड़ी' की पीठ पर चढ़ कर बहुत सी नारियाँ उतराकर बहने लगीं। एक साथ मिलकर पंक्तिबद्ध होकर गाने गाने लगी।"

"अति उत्तम। किन्तु, उन दिनों क्या 'पानकौड़ी' की उत्पत्ति हुई थी?"

"जरूर हुई थी, पक्षियों के ही गले में पहले सुर बाँधा जा रहा था। यही नियम चल रहा था। दुर्बलता के साथ ही मधुरता का

अच्छेद्य योग रहता है, तत्व की प्रथम परीक्षा उन दुर्बल जीवों के पंखों में हुई और कंठों में भी हुई। मैं एक बात कहूँगा, नाराज तो न होगे?"

"नहीं नाराज होने की चेष्टा करूँगा।"

"युगान्तर में पितामह ने—मानव-समाज में दुर्बलता की प्रतिस्थापना करने के लिये कवियों को उत्पन्न किया था तब उन्होंने उस सृष्टि का साँचा इन पक्षियों से ही प्राप्त किया था। उस दिन—साहित्य सम्मेलन की तरह एक कारवाई उनके ही सभा मण्डप में हुई थी। सभापति की हैसियत से, कवियों को बुलाकर उन्होंने कह दिया था, तुम लोग मन ही मन शून्य में उड़ते रहो, और छन्दों में गाना गाते रहो अकारण ही, जो कुछ भी कठोर है, वह तरल हो जाये, जो कुछ बलिष्ठ है वह लटक जाय अर्द्ध हो कर—कविसम्राट, तुम आज उनकी बात को रखते आये हो।"

"रखना ही पड़ेगा, जब तक कि साँचा बदल नहीं दिया जाता।"

"आधुनिक युग सूख कर कठोर होता जा रहा है, मोम का साँचा अब मिलेगा ही नहीं। अब वह दिन नहीं रहा जब नारीदेवता की जलग्रह पद्म के ऊपर झूलती रहती थी, जब कि मनोहर दुर्बलता से यह पृथ्वी पाताल में निमग्न थी।"

"सृष्टि उस कोमल के छन्द में आकर ही क्यों न रुक गयी?"

"कुछ युगों के व्यतीत होते न होते ही धरणी देवी ने अकिंचनों से चतुर्मुख के दरबार में आवेदन-पत्र भेजा। उन्होंने कहा—ललनाओं का यह ललकार बहुल लालित्य तो अब सहा नहीं जाता। स्वयं नारियाँ ही करुण कल्लोल से घोषण करने लगीं—हमें अच्छा नहीं लगता। अर्धलोक से प्रश्न आया। क्या अच्छा नहीं लगता? सुकुमारियों ने

कहा—हम बता नहीं सकतीं।—क्या चाहिये—क्या चाहिए, इसका भी पता हमें नहीं चलता।"

"उनमें क्या झगड़ालू प्रकृति की भी अभिव्यक्ति नहीं हुई है। शुरू से आखिरी तक ही क्या सुवचनियों की ही भरमार है?"

"झगड़े का उपयुक्त उपलक्ष्य न रहने से ही वाक्यवाणों की टंकार अथाह में निमग्न हो गयी? झाड़ू की काटी के अंकुर को कहीं भी जगह नहीं मिली।"

"इतने बड़े दुःख के समाचार से शायद चतुर्मुख लज्जित हो गये?"

"अति लज्जा। चारो मस्तक झुक गये। राजहंस के कोटियोजन व्यापी दोनों डैनों पर पूरे एक ब्रह्मयुग तक वे बैठे रहे। इधर आदिकाल की लोक विश्रुत साथी 'पान कौड़िनी' भी जिन्होंने शुभ्रता में ब्रह्मा के परमहंस के साथ होड़ लगाने की साधना में हजार बार जल में डुबकी लगाकर चोंच की रगड़ से अपने पंखों को तृणवत—बना दिया था, बोल उठी—जहाँ निर्मलता ही निरतिशय है वहाँ शुचिता का सर्व प्रधान सुख ही छूट जाता है। जैसे दूसरों को खोंचा देना। शुद्ध सत्व होने का मजा ही नहीं रहता। उन्होंने प्रार्थना की—हे देव, अति शीघ्र प्रबल वेग से और भूरिपरिमाण में मलिनता ही चाहिये। तब विधि अस्थिर हो कर उछल उठे, बोले—भूल हो गयी संशोधन करना होगा—बस कैसा गला था! जान पड़ा महादेव के महावृसभ की गरदन पर महादेवी का महासिंह आ गया है—अति लौकिक सिंहनाद और वृषगर्जन दोनों ने एक साथ मिलकर द्युलोक की नीलमण्डित भीत में दरारे डाल दीं। आनन्द पाने की आशा से विश्णुलोक से दौड़ लगा कर नारद जी आ गये। अपनी ढेंकी की पीठ पर थपकी लगाकर बोले—"ढेंकी माता,

भावी-लोक के विश्व-बेसुर का आदिमंत्र् तुम सुन रक्खो, यथासमय घर फोड़ने के काम में यह मंत्र लगेगा। तब दिक् नागों ने सूँड़ उठा कर क्षुब्ध ब्रह्मा के चार गलों के ऐक्यतान आवाज के साथ—अपना सुर मिलाया। शब्दों के धक्के से देवाङ्गनाओं के वेणीबन्ध खुल गये। आकाश में आदि से अन्त तक बिखरे बालों से उल्लास भर गया—मालूम हुआ कि काले बालो को उड़ाती हुई व्योमतरी कालपुरुष के श्मशान घाट की ओर दौड़ चली है।

"जो कुछ भी हो, सृष्टिकर्ता पुरुष तो हैं।"

पौरुष दबा नहीं रहा। उनके पीछे के दो मुखों के चार नासा-फलक फूल उठे, हाँफ उठने वाली विराट भाथी की भांति। चार नासा-रंध्रों से एक ही साथ तूफान आकाश के चारों दिशाओं को खदेड़ता हुआ उठ पड़ा। दुर्जय शक्तिशाली बेसुर प्रवाह ब्रह्माण्ड में वही प्रथम बार मुक्त हो गया—शब्द होने लगे गों-गों-गों हुड़ मुड़ दुदाड़ गड़ गड़ धड़ धड़ धड़ाड़। गन्धर्वों ने दलबद्ध हो कर कांधे पर तम्बूरा रख कर दौड़ना शुरु किया, इन्द्रलोक के आँगन में जा पहुँचे। जहाँ शचीदेवी स्नान करके मन्दार कुंज की छाया में पारिजात केशर के धूप में बालों को सुखाने के लिये जाती हैं। धरणीदेवी—भय से कांपने लगी, इष्ट मंत्र जपते-जपते सोचने लगीं, शायद मैंने भूल की है। उस बेसुर वाली आंधी के उलटे-पलटे धक्के से तोपों के मुँह के उत्तप्त गोले की भांति धक् धक् शब्दों के साथ पुरुष निकलने लगे। क्या दादा, चुप चाप क्यों हैं। ये बातें क्या अच्छी नहीं लगतीं?"

"जरूर लग रही हैं। एक दम दुम् दाम शब्दों से लग रही है।"

"सृष्टि के सर्व प्रधान पर्व में बेसुर का ही राजत्व है, यह बात समझ गये तो?"

"समझा दो न।

"तरल जल के कोमल एकाधिपत्य को घूसे लगा कर, लात मार कर, धक्का लगा कर तट भूमि पथराते ऊबड़ खाबड़ मुण्डों के साथ निकलने लगा। भूलोक के इतिहास में इसी को सब से बड़ा पर्व मानते हो या नहीं।"

"जरूर मानता हूँ।"

इतनी देर के बाद विधाता का पौरुष जमीन पर प्रकट हो गया। पुरुष का स्वाक्षर सृष्टि की कठोर जमीन पर पड़ गया, प्रारम्भ में ही यह कैसी भीषण पहलवानी दिखाई पड़ी, कभी तो आग से जला कर, कभी बर्फ से जमा कर, कभी भूकम्पकी जबर्दस्ती के द्वारा भूमि देने कोमुँह बाने को बाध्य करके कविराज वटिका की तरह पहाड़ों को खिलाना—इसमें तो स्त्रियोंचित भाव कुछ भी नहीं है, यह बात मानते हो तो।"

"जरूर मानता हूँ।"

"जल में कलध्वनि उठती है, हवा में बांसुरी बजती है सोंसों—किन्तु विचलित तट भूमि जब पुकारने लगती है, तब भरत के संगीत शास्त्र को व्यर्थ कर देती है। तुम्हारा मुँह देखने से मालूम होता है कि यह बात तुमको अच्छी नहीं लग रही है। क्या सोच रहे हो बता ही दो न।"

"मैं सोच रहा हूँ कि आर्ट मात्र में एक पुरागत परम्परा है जिसे ट्रेडीशन कहते हैं। अपनी बेसुरध्वनि के आर्ट को मौलिक-कह कर प्रमाणित कर सकते हो ?"

"खूब कर सकता हूँ। तुम लोगों के सुर का मूल ट्रेडीशन—स्त्री-देवता के वाद्ययंत्र में है। यदि बेसुर का उद्भव ढूँढना चाहते हो तो पौराणिक स्त्रियों का इलाका छोड़ कर पार कर पुरुष-देवता जटाधारी के दरवाजे पर चले जाओ। कैलास में वीणायंत्र गैर कानूनी चीज है,

उर्वशी ने वहां नाच का बयाना नहीं लिया है। जो वहां भीषण बेताल से ताण्डवनृत्य करते हैं नन्दी भृङ्गी उनका सिंघा बाजा बजाता रहता है। वे बजाते हैं बम् बम् गालवाद्य और कड़ाकड़ डमरू। कैलाश का पत्थर पिण्ड हो कर ध्वंस होकर गिरता रहता है। महा बेसुर की आई उत्पति अब स्पष्ट हो गयी तो ?"

"हो गयी।"

"सुर की हार और बेसुर की जीत को याद रक्खो, इसी को लेकर पुराण में दक्षयज्ञ की कथा रची गयी है। एक दिन यज्ञ सभा में देवता लोग जमा हो गये थे, उनके दोनों कानों में कुण्डल थे, दोनों बांहों में अनन्त थे, गले में मणि माला थी, कैसी बहार थी। ऋषि-मुनियों के शरीर से ज्योति छिटक पड़ी थी। कंठ से अनिन्द्य सुन्दर सामगान उठ पड़ा था। त्रिभुवन का शरीर रोमांचित हो गया था। अकस्मात् कुश्री कुरूप का बेसुरी दल आ गया था—शुचि सुन्दर की सुकुमारता क्षणमात्र में नष्ट भ्रष्ट हो गयी। कुश्री के सामने सुश्री की हार हो गयी, बेसुर के सामने सुर की—पुराणों में यह बात किस आनन्द से किस अट्टहास्य से कीर्तित हुई है। पुस्तक के पन्नों को उलटने से ही पता पा जाओगे। बेसुर का शास्त्र सम्मति ट्रेडीशन तुम देख रहे हो। यह तुन्दिल तनु गजानन सबसे पहले पूजा पाते हैं—यही है आँखों को भुलावे में डाल देने वाली—दुर्बल ललित कला के विरुद्ध स्थूलतम प्रोटेष्ट। वर्तमान युग में। गणेश जी का यहीं सूंड चिमनी की मूर्ति धारण कर पाश्चात्य यज्ञशालायें वृंहत ध्वनि कर रहा है। गणनायक के सह कुत्सित बेसुर के जोर से क्या वे लोग सिद्धि नहीं पा रहे हैं? विचार कर देखो।"

"देखूंगा।"

"जब देखना तब इस बात पर भी विचार कर लेना, बेसुर का अजेय माहात्म्य कठोर तट भूमि पर ही है। सिंह हो, बाघ हो, या बैल ही हो जिनकी गर्व के साथ बीर पुरुषों से तुलना की जाती है, उन्होंने किसी भी दिन उस्तादजी से गला नहीं साधा था। इस बात पर क्या तुमको सन्देह है?"

"तिलमात्र भी नहीं।"

"यहां तक कि जमीन पर रहने वाला अधम पशु गया है। जितना भी दुर्बल वह क्यों न हो, वह वीणापाणि की बैठक में शागिर्दी करने नहीं गया। यह बात उसके शत्रु मित्र सभी सर्व सम्मति से स्वीकार करेंगे।"

"वे करेंगे?"

"घोड़ा तो पालतू जानवर है—लात मारने योग्य खुर रहने पर भी वह चुप चाप चाबुक की मार सहता है।—उसके लिये उचित था कि अस्तबल में खड़ा हो कर झिंझिट खम्बाज का अभ्यास करता। अपनी चिं हिं हिं हिं आवाज से वह ढेर के ढेर सफेन चन्द्र-बिन्दुओं की वर्षा तो अवश्य करता है, फिर भी बेसुर के अनुनासिक स्वर से वह जमीन की सम्मान रक्षा करने में भूल नहीं करता। और जो गजराज है, उसकी तो बात ही क्या कहें। पशुपति से दीक्षा-प्राप्त जितने भी स्थलचर जीव हैं उनमें से क्या कोई भी कोकिल-कंठ निकाल सकता है। तुम्हारा वह बुलडाग फ्रेंडी अपने चीत्कार से मुहल्ले वालों की नींद खराब करता है, उसके गले में यदि विधाता श्याम 'कोयल' पक्षी की सिसकारी-सी आवाज भर दें, तो उस हालत में वह अपने मधुर कंठ की असह्य धिक्कार से तुम्हारी चलती हुई मोटर के नीचे कूद पड़ेगा, यह मैं बाजी रख कर कह सकता हूँ। अच्छा सच बताओ,

कालीघाट का खस्सी यदि कर्कश 'बें बें' शब्द न करे, तो क्या तुम जगत्माता के पवित्र मन्दिर से उसे दुर-दुर करके खदेड़ दोगे ।"

"निश्चय ही खदेड़ दूँगा ।"

"निश्चय ही खदेड़ दूँगा !"

"तो इस हालत में तुम समझ सकते हो कि हमने जो महत्-व्रत लिया है, उसकी सार्थकता क्या है । हम कठोर जमीन के शक्तिशाली सन्तान हैं । बेमतलब के बातों में पड़कर आगे बढ़ते जा रहे हैं । अधमरे प्रयोगों से हम देश को शक्तिशाली बनाना चाहते हैं । जागरित कर देना चाहते हैं । और जागरण कार्य शुरू भी हो गया है । मुहल्ले में, पड़ो-सियों की बलिष्ठता दुम-दुम शब्दों से दुर्दाम होती जा रही है, मेरे चेले पीठों पर इसका प्रमाण पा रहे हैं, ब्रिटिश साम्राज्य के कोतवाल लोग चंचल हो उठे हैं, शासकों की मति ठिकाने आ गयी है ।"

"तुम्हारे गुरु ने क्या कहा है ।"

"वे महानन्द में निमग्न हैं दिव्यनेत्रों से देख रहे हैं, बेसुर का नव-युग समस्त जगत् में आ गया है । सभ्य जाति के लोग आज कह रहे हैं कि—बेसुर में ही वास्तविकता है । उसी में पौरुष पुंजीभूत है, सुर की स्त्रियोचित रीति ने ही सभ्यता को दुर्बल बना दिया है । उनके शासन कर्ता कह रहे हैं, शक्ति चाहिये, क्रिस्तानी नहीं चाहिये । राष्ट्र विधियों में पर्दे पर्दे पर बेसुर चढ़ता जा रहा है । वह क्या तुम्हारी नजर में नहीं पड़ता दादा ।"

"नजर में पड़ने की जरूरत ही क्या है भाई । पीठ पर दमादम पड़ रहा है ।"

"इधर—वेताल पचीसी ही साहित्य की गरदन पर सवार हो गयी है, आनन्द मनाओ ।"

"यह तो मैं देखता हूँ।

"इधर गुरु के आदेश से बेसुर मंत्र की साधना करने के लिये हमने 'है-है संघ' स्थापित किया है। हमारे दल में एक कवि मिल गये हैं। उनका चेहरा देख कर आशा हुई थी कि नवयुग के मूर्तिमान हैं। रचना देख कर भ्रम टूट गया। देखता हूँ कि तुम्हारा ही चेला है। मैं हजारों बार कह रहा हूँ कि छन्द का मेरूदण्ड गदा के आघात से तोड़ डालो। कह चुका हूँ। अर्थम नर्थं भावय नित्यम्। मैंने समझा दिया है कि बात के अर्थ का सम्मान करने से केवल दासबुद्धि का गाँठदार मन ही पकड़ में आजाता है। फल नहीं दिखाई पड़ता, बेचारे का दोष नहीं है— पसीने से लथ पथ हो जाता है, फिर भी सज्जनोचित काव्य का स्वरूप दूर नहीं कर सकता, उसको मैंने परीक्षाधीन अवस्था में रख दिया है, प्रथम नमूना जिसे समिति के सामने दाखिल किया है उसे मैं सुना देता हूँ। सुर बाँध कर सुना न सकूँगा।

"तो अब सुनो—कह कर वह कविता सुनाने लगा—

पैरों पड़ूँ सुनो भाई गाइये।
है है टोला छोड़ दूर चले जाइये।
यहाँ सा-रे गा-मा से सुरा सुर युद्ध,
शुद्ध कोमल सब एक दम अशुद्ध।
अभेद रागिणी राग बहन और भाई
तार टूटा तम्बूरा ताल काटा बजाई।
दिन रात शुरू—होता विवाद।

सभा के हम सभी एक स्वर से बोल उठे—यह न चलेगा। अभी जाति की माया काटी नहीं गयी है। शुचिता की सनक से नाड़ी अशुद्ध

है। हम छन्द हीनता भर पूर चाहते हैं, कवि की मीयाद बढ़ा दी गयी। मैंने कहा—"फिर एक बार कमर कस कर लग जाओ। जोर लगाओ, पीट कर ठोंक कर चलो। धक्का लगा कर जोर चलाने का काम आज दुनिया में सर्वत्र चल रहा है। हमारी जाति क्या सोती ही रहेगी?" मैंने देखा उसका हृदय विचलित हो गया है बोला—"नहीं, नहीं, कभी नहीं।" कलम पकड़ कर मेज पर जा बैठा, हाथ जोड़ कर गणेश जी से बोला—सिद्धिदाता, अपनी कलावधू को मेरे अन्तः पुर में भेज दो, मेरे दिमाग में अपने सूँड का आघात लगा दो, मेरी मातृ भाषा में भूकम्प आजाने दो। जोर का तप्त पंक कलम के मुँह पर निकल आने दो, श्रुति कटुता की चोट से बालकों को जगा दो।"

कवि पन्द्रह मिनट बाद चीत्कार-स्वर से सुनाने लगा—उसका चेहरा लाल हो उठा। सिर के बाल बिखरे दिखाई पड़े—

मैं घबड़ा उठा, हाथ उठा कर बोला—

"ठहरो, ठहरो, अब जरूरत नहीं है। जयदेव का भूत अभी कंधे पर बैठा कर सरकस कर रहा है? यदि उस लेख का गयाधाम में पिण्ड देना चाहो तो उसके ऊपर मूसल चला दो। उसको बिलकुल नष्ट कर दो।"

कवि ने हाथ जोड़ कर कहा—'मैं यह न कर सकूँगा तुम हाथ लगाओ।"

मैंने कहा—"वह जो मरहट्टा शब्द तुम्हारे मस्तिष्क में आ गया है, उसी में तुम्हारे भविष्य की आशा है। इस शब्द से तो सबको तोड़ डाला है। अर्थ की जड़ मिट्टी के नीचे रह गयी है, फिर भी डंठल पकड़ कर ध्वनि की मार मूर्ति खड़ी है। अब समूचे को छिन्न भिन्न कर देता हूँ, देखो कैसा स्वरूप बनता है—

"दादा, यह मैंने तुम्हारी नकल नहीं की, है, यह सार्टिफिकेट मुझे देनी पड़ेगा ।"

"खुशी से दूँगा ।

"नवयुग का महाकाव्य तुमको लिखना पड़ेगा, दादा ।"

"यदि हो सका, तो लिखूँगा । विषय क्या है ।"

"बेसुर हिडिम्ब की दिग्विजय ।"

× + +

पूपू दीदी से मैंने पूछा—"सुनने में यह कहानी कैसी लगी ?"

पूपू बोली—"चकाचौंध कर दिया ।

"अर्थात—"

"अर्थात्, सुरासुर के युद्ध में असुरों की जय मुझे किस कारण खराब नहीं लगी, यही सोच रहा हूँ । कुश्री गँवार की ही तरफ मन राय देना चाहता है ।"

"इसका कारण यह है कि तुम स्त्री जातीय हो । अत्याचार का मोह दूर नहीं हुआ है । मारने की शक्ति को पत्यक्ष देख कर मार खाकर आनन्द पाते हो ।"

"अत्याचार का आक्रमण मन लायक है यह तो मैं कह नहीं सकता—किन्तु बीभत्स मूर्ति से जो पौरुष घूसा तान कर उठ खड़ा होता है, वह सब्लाइम मालूम होता है ।"

"मैं अपना मत कहता हूँ । दुःशासन का आस्फालन पौरुष नहीं है, वह एक दम उलटा है । आज तक पुरुष ने ही सुन्दर सृष्टि की है बेसुर के साथ उसने युद्ध किया है । असुर उसी परिमाण में जोर का मान करता है । जिस परिमाण में पुरुष का पुरुष होता है । आज संसार में इसका ही प्रमाण पा रहा हूँ ।"



१४

पूपू दीदी ने यही समझ लिया कि मैंने उसकी मर्यादा हानि की है। उस समय सन्ध्या हो रही थी। आराम कुर्सी पर टेक कर वह मेरे निकट बैठ गयी। अपना मुँह दूसरी तरफ करके उसने कहा—"तुम मुझको लेकर बना-बना कर केवल लड़कपन ही कर रहे हो। इस काम में तुमको क्या सुख मिलता है।"

आजकल उसकी बात सुनकर हँसने का साहस नहीं होता। भले आदमी की ही तरह अपने मुँह का भाव रख कर मैंने कहा—"तुम्हारी जो उम्र है उसमें पक्की बुद्धि का प्रमाण देने में ही तुमलोगों का आग्रह रहता है मेरी उम्र के लोगों को जिस मज्जा पर सोचना अच्छा लगता है, वह अभी तुम में कच्ची है। सुयोग पाते ही, मन लगा कर जो लड़कपन करता हूँ वह तो बना कर ही करना पड़ता है, इसलिये शायद वह मन के लिए रुचिकर नहीं होता।

"इसी कारण शुरू से अन्त तक ही यदि लड़कपन करते रहोगे तो उससे वास्तविक लड़कपन ही प्रकट होगा। उसमें बाल्यकाल के भीतर-

भीतर बड़ी उम्र की मिलावट रहती है।"

"दीदी, यही एक बात तुमने ठीक मन लायक कही है। शिशु के कोमल शरीर में भी कड़ी हड्डी की जड़ निहित रहती है। यह बात क्या मैं भूल गया था?"

"तुम्हारा बकवाद सुन कर यही मालूम होता है कि जब मैं छोटी थी, तब ऐसा कुछ भी नहीं था जो व्यंग्य करने के लिये नहीं पर मजा उठाने के लिए था।"

"इसका उदाहरण दिखाओ।"

"मान लो, हमारे मास्टर साहब हैं। वे अद्भुत थे, किन्तु विशुद्ध अद्भुत। इसीलिये वे बहुत ही अच्छे लगते थे।"

"अच्छा, उनकी बातें जरा सुना दो न।"

"आज भी उनका मुँह साफ याद पड़ रहा है। क्लास में डट कर बैठते थे। पुस्तकें कंठस्थ थीं। ऊपर ताकते रहते थे, पाठ सुनाते जाते थे। मालूम होता था कि बातें आकाश से मधु झर रही हैं। हम क्लास में उपस्थित रहें, मन लगा कर पढ़ें, इसकी गरज केवल हमको ही है, यही उनकी साधारणा थी।"

"तुम लोगों का मुँह पहचान लेने का सुयोग शायद उनको नहीं मिला था।"

"चेष्टा भी उन्होंने नहीं की। एक दिन छुट्टी के लिये उनके कमरे में गयी तो वे घबड़ा कर कुर्सी छोड़ कर उठ खड़े हुए, सोचने लगे कि मैं विधिवत् महिला ही हूँ।"

"ऐसी ही अकाल्पनिक भूलें करना शायद उनका अभ्यास था।"

"अवश्य ही था। तुम्हारी दाढ़ी देख कर "तुमको नवाब खंजे खाँ

प्राइवेट सेक्रेटरी समझने की भूल तो उन्होंने नहीं की? नहीं, मजाक नहीं, वे तो तुम्हारे मित्र थे, उनकी बातें सुनाओ न।"

\+ \+ \+

"अच्छा सुनाता हूँ। उनका शत्रु कोई भी नहीं था, किन्तु समझदार मित्र केवल मैं ही था। जब लोग उनके पागलपन की बात फैलाते थे, तब वे आश्चर्य में पड़ जाते थे। एक दिन मेरे पास आकर वे बोले—सभी, कह रहे हैं कि, मैं क्लास पढ़ाता हूँ किन्तु क्लास की तरफ ताकता नहीं हूँ।"

मैंने कहा—"तुम्हारे संगी साथी तुम्हारी विद्या में दोष नहीं पकड़ सकते वे तुम्हारी बुद्धि में दोष पकड़ते हैं। वे कहते हैं कि पढ़ाने में तुमसे भूल नहीं होती, किन्तु पढ़ा रहे हो, इसी बात को भूल जाते हो।"

"मैं पढ़ा रहा हूँ, इसे यदि न भूलूँ, तो मैं पढ़ा ही नहीं सकता, केवल मास्टरी ही करता रहता। पढ़ाना एकदम समाप्त हो गया है, उसके बारे में मन सोचता ही नहीं है।"

"जलचर जल में तैरता है तो पता ही नहीं चलता। स्थल चर तैरता है तो खूब मालूम होता है। तुम अध्यापन सरोवर के गंभीर जल की मछली हो।"

"तुम्हारा वह क्लास कहाँ है?"

"कहीं भी नहीं इसीलिये तो मुझे कोई बाधा नहीं पड़ती। यदि छात्रगण ही मेरे मन को छेंक कर बैठे रहेंगे तो उस हालत में क्लास की आत्मा पुरुष आड़ में छिप जाते हैं।"

"पढ़ो, बेटा आत्मा राम—यही शायद तुम्हारी बोली है?"

"मैं पढ़ता कहाँ हूँ। अपने आत्मा राम को ही टहला रहा हूँ।"

"तुम्हारी प्रणाली कैसी है ?"

"प्रवाह की जो प्रणाली गंगा जी की धारा की है, वही प्रणाली। दायें बायें कहीं मरु है, कहीं फसलें है, कहीं श्मशान है, कहीं शहर है, इसके बारे में यदि गंगामाई को पग-पग पर विचार करना पड़ता, तो आज तक सगर—सन्तानों का उद्धार न हो पाता। जिनको जितना होना होता है, उतना ही उनको होता है, विधाता के साथ टक्कर लगा कर उससे अधिक होने के लिये चेष्टा करने से ही चलना बन्द हो जाता है। मेरा पढ़ाना मेघ की तरह शून्य से चलता है, विविध खेतों में वर्षा होता है, खेत के अनुसार फसल मिलती है। असम्भव के लिये ठेलाठेली करके मैं समय नष्ट नहीं करता। इसीलिए हेडमास्टर नाराज हो जाते हैं। उस हेडमास्टर को भी क्या सत्य है मान लेने में बड़ी भूल हो जाती है।"

× × ×

पूपू ने कहा—"छात्राओं में अनेक मनहीमन भुनभुनाती रहती थीं। उनको लक्ष्य करके उन्होंने एक दिन कहा था, यहां जो मास्टर रहते हैं, उनको मैंने नहीं कर दिया है, तुम्हारे मन में विश्वास बना लेने के लिये। और एक दिन उन्होंने कहा था। मैं मास्टरी में क्लासिक हूँ और सिधू बाबू रोमांटिक हैं। मास्टर साहब की बात कुछ भी नहीं समझ सकती कहने को प्रेरित मत कीजिये।"

"इसका अर्थ यह है कि मास्टर समूचे क्लास को ही ऊपर उठा देते थे, और सिधू छात्रों को एक-एक करके अपने कंधे पर चढ़ाकर पार कराते थे। समझती हो ?"

"नहीं कहो। समझने की कोई जरूरत नहीं है। तुम उनकी बात सुनाओ! सुनाने में मजा लगता है।"

"मुझे भी आता है, क्यों कि उस मनुष्य को समझने में देर लगती है, एक दिन चीनी दार्शनिक की दोहाई देकर मास्टर ने मुझसे कहा कि जिस राज्य में राजत्व नहीं है वही राज्य सब राज्यों में श्रेष्ठ है।"

पूपे ने गर्व के साथ कहा—"हमारा क्लास श्रेष्ठ क्लास था, इसमें कोई सन्देह नहीं है।"

मैंने कहा—"इसका कारण यह है कि प्रमाण रहने पर भी तुम्हारी मन्द बुद्धि का लक्षण मास्टर लक्ष्य न करते थे।"

पूपे ने सिर हिलाकर कहा—"इसको मैं गाली कहूँ या मजाक?"

मैंने कहा, "पास से चलते चलते मैं तुम्हारे बालों को खींच देता हूँ यह मजाक उसी स्निग्ध श्रेष्ठ का है। इसमें 'अद्य युद्धत्वया मया' की घोषणा नहीं है।"

"पूपे ने कहा–"मास्टर साहब की व्यवस्था भी हास्यास्पद ढंग की थी। वे कहते थे, तुम लोगों को अपनी खबर आप ही जरूर रखनी चाहिये। तुम लोगों की देख भाल करने का काम मेरा नहीं है। प्रति दिन के पाठ की खबर हम खुद ही रखती थीं, मार्क देने का नियम हमें मालूम था।"

"उसका फल क्या हुआ?"

"मार्क कम ही देती थीं।"

"क्या कभी धोखा नहीं खाती थी।"

"बाहर का कोई मार्क देने वाला रहता तो उसे धोखा देने का लोभ हो सकता था। अपने को ठगना मूर्खता है। विशेषतः वे तो देखते नहीं थे।"

"उसके बाद?"

"उसके बाद प्रति तीसरे मास में स्वयं ही हिसाब जोड़ कर जान

जाती थी कि ऊपर चढ़ रही हूँ या नीचे उतर रही हूँ।"

"तुम्हारा स्कूल क्या सतयुग का हाई स्कूल है, अत्यन्त हाई है? धोखा देने के लिये आदमी भी शायद कोई—नहीं था?"

"मास्टर अविचलित थे। वे कहते थे, संसार में एक श्रेणी के लोग जरूर धोखा देते रहेंगे। किन्तु अपना दायित्व जो स्वयं अपने हाथ में रखते हैं उनमें वे ही कम धोखा देते हैं। हमारी सजा भी उसी श्रेणी की थी। वह बाहर से नहीं थी। एक दिन हाजिरी के नाम पुकारते समय प्रिय सखी का परसेण्टेज बचाने के लिये मैं झूठ बोली थी। उन्होने कहा—अपवित्र हो गयी, प्रायश्चित करो। वे जानना भी नहीं चाहते कि मैंने किया है या नहीं।"

"तुमने प्रायश्चित किया था?"

"अवश्य ही किया था।"

"अर्थात पाउडर की डिबिया अपनी प्यारी सखी को तुमने दान कर दी थी?"

"मैं कभी पाउडर नहीं लगाती।"

"तुम कहना चाहती हो कि तुम्हारे मुँह का रंग खास अपनी ही चीज है?"

"और जो कुछ भी हो, मैंने तुमसे उधार नहीं लिया है, मिलान करके देखने से ही समझ सकोगे।"

छिः, मेरे ऊपर यदि तुम्हारी दृष्टि में भेद बुद्धि दिखाई 'पड़े' तो उस हालत में जाति पर दोषारोप होता है। हम तो सवर्ण हैं—वर्ण-भेद की गुंजाइश कहाँ है। अपने निकट कवि रहते तो कहते, तुम्हारे शरीर का रंग ब्रह्मा की हँसी से फूट निकला है।"

"और तुम्हारा रंग उनके मजाक की हँसी से निकला है।"

"इसको ही कहते हैं अन्यान्यस्तुति, म्युचुएल ऐडमिरेशन। पितामह के पास दो प्रकार की हँसी हैं—एक है दन्त्य, दूसरी है मूर्धन्य, मुझ में मूर्धन्य हँसी लगी है, अंग्रेजी में उसे विट कहते हैं।

"दादा जी, अपना ही गुणगान तुम्हारे मुँह से कभी रुकता नहीं है।"

"वही मेरा प्रधान गुण है। जो लोग अपने आप को जानते हैं, मैं उसी असामान्य-दल में हूँ।"

"मुँह खुल गया है, किन्तु अब नहीं, अब रुक जाओ, मास्टर साहब के बारे में बात चीत हो रही थी, अब तुम्हारी अपनी ही बात उठ पड़ी।"

"इसमें दोष ही क्या है। विषय तो उपादेय है, जिसको—अंग्रेजी में इण्टरेस्टिंग कहते हैं।"

"विषय तो सर्वदा ही सामने पड़ा हुआ है। उसको स्मरण करने की तो जरूरत नहीं पड़ती। उसको तो भूल जाना ही कठिन है।"

+ + +

अच्छा, तो मैं मास्टर का विशेष परिचय तुमको दे रहा हूँ, लिख रखने योग्य है। एक दिन सन्ध्या समय मास्टर ने कुछ लोगों को निमंत्रण दिया था। खबर उसे याद है या नहीं, यह जान लेने के लिए जल्दी में ही उसके घर चला गया। सेवक कन्हाई के साथ उसकी जो आलोचना चल रही थी, वह बात बता रहा हूँ कन्हाई ने कहा—"जगद्धात्री पूजा के कारण बाजार में चिंगड़ी मछली का दाम बढ़ गया है इस कारण अण्डे वाला केकड़ा ले आया हूँ।"

मास्टर ने जरा चिंतित हो कर कहा—"केकड़े से क्या बनेगा? वह बोला—"लउकी मिल कर झोल, वह मजेदार होगा।"

मैंने कहा—"चिंगड़ी मछली पर तुम्हारा लोभ था ?"

मास्टर बोला—"जरूर ही था।"

"तब तो लोभ दबा रखना पड़ेगा।"

"यह क्यों ? लोभ तो तैयार ही है, उसे मोड़ करके केकड़े की लाइन में चला दूँगा।"

"देख रही हूँ कि तुमको बहुत रोकना पड़ता है।'

मास्टर बोला—"केंकड़े का झोल तो अनेक बार खा चुका हूँ। पूरा मन नहीं भरा, इसबार जब मैंने देख लिया कि कन्हाई की जीभ पर लालच आ गयी है तब उसकी सिक्त रसना के निर्देश से खाते समय मन केंकड़े की तरफ झुक पड़ेगा तो रस अधिक मात्र में पाऊँगा। केंकड़े के झोल को उसने मानो लाल पेन्सिल से अन्डर लाइन कर दिया। उसे अच्छी तरह कंठस्थ करने के लिये मुझे सुविधा हुई।"

मास्टर ने पूछा—"आँटियों में बँधा वह क्या लाया है ?"

कन्हाई बोला—"यह है सँहिजन का डंठल।"

मास्टर ने गर्व के साथ मेरी तरफ देख कर कहा—"यह देखो मजा। उस बाजार में जाते समय मुझे लउके की फुनगियों का ख्याल था। वह बाजार से लौट आया, मुझे मिल गया सहिजन का डंठल। हुकुम न देने की यही सुविधा है।"

मैंने कहा—"सहिंजन का डंठल ला कर यदि वह चिड़चिड़ा लाता ?"

"मास्टर ने कहा—"तो उस हालत में थोड़ी देर के लिये सोचना पड़ता, नाम पदार्थ का प्रभाव होता है, .चिड़चिड़ा शब्द लोभ जनक नहीं है। किन्तु यदि कन्हाई उसे विशेष रूप से चुन लाता, तो उस हालत में संस्कार को काट देने का एक उपलक्ष्य मिलता। जीवन में

सबसे पहले सोच लेने का सुयोग मिलता कि 'देख ही ले न' शायद मैं यह आविष्कार करता कि वह खराब चीज नहीं है। चिड़चिड़ा पदार्थ के विरुद्ध अन्ध विराग दूर होकर उपभोग की सीमा बढ़ जाती, इसी प्रकार काव्य में कवि की अपनी रुचि से हमारी रुचि का प्रसार बढ़ता जा रहा है सृष्टि को अएडर लाइन करना ही उनका काम है।"

"तुम्हारी रुचि का प्रसार बढ़ाने के काम में कन्हाई का ऐसा ही हाथ है?"

"जरूर है। उसके न रहने से 'पिड़िंग" साग में किसी भी दिन ध्यान न देता, वह शब्द मुझे धक्का लगाता, संसार में संस्कार-मुक्ति ही तो अधिकार व्याप्ति है।"

"उसी महान काम में तुम्हारा कन्हाई है! यह तो मान ही लेना पड़ेगा। उसकी इच्छा के योग से मेरी इच्छा की संकीर्णता प्रति दिन दूर हो जाती है। मैं अकेला रहता, तो ऐसी बात न होती।"

"मैं समझ गया किन्तु कन्हाई की इच्छा की सीमा—"

"मैंने जरूर ही बढ़ा दी है। पूर्वी बंगाल के लोग उड़द की दाल का नाम सुनना नहीं चाहते थे आज कल हिंग डाल कर वह उड़द की दाल खूब खा रहे हैं।"

ऐसे ही समय में कन्हाई फिर आ गया। बोला—"एक बात बताना आज भूल ही गया, आज मैं दही नहीं लाया हूँ, कविराज जी ने कहा कि रात को दही निषिद्ध है।"

"दही का दाम चढ़ गया है, कहने से द्विरुक्ति होती है। इसी लिये कविराज जी को ऐसा कहना पड़ा। सांत्वना देने के लिये बोले, अदरख का थोड़ा सा रस मिला कर पतली चाय बना दूँगा, जाड़े की रात में उपकार होगा।"

मैंने पूछा—"यह तुम क्या चाहते हो मास्टर, अदरख के साथ क्या सभी को चाय पिलाओगे।"

"सबकी बात मैं कैसे कहूँ। जो लोग पीयेंगे, वे पीयेंगे। उपकार हो सकता है। जो लोग न पीयेंगे, उनका कोई अपकार न होगा।"

मैंने कहा—"मास्टर चीनी दार्शनिक के उपदेशानुसार तुम्हारी गृहस्थी में मालिक शायद कोई नहीं है?"

"नहीं।"

"तो फिर नौकर भी क्यों है? ।"

मालिक न रहने से नौकर स्वत: ही नहीं रहता।"

"तुम्हारे यहाँ नौकर मालिक एक दम मिल जाने से शायद एक यौगिक पदार्थ खड़ा हो गया है?"

मास्टर ने हँस कर कहा—"आक्सीजन हाइड्रोजन का दहनशील मिजाज दूर हो कर दोनों के मिलन से एक दम जल हो गया है!"

मैंने कहा—"यदि तुम ब्याह करते भाई। गाँव छोड़ कर चीन का दर्शन दौड़ लगाता, रह कर भी न रहे, ऐसा निर्विशेष पदार्थ गृहिस्थी नहीं है। मुँह के ऊपर घूघट काढ़ कर भी तुम्हारी गृहस्थी में वह अतिशय स्पष्ट हो रहती। उसके राज्य में राजत्व उसके कटाक्ष से हिलता रहता, सर्वदा वह धक्का लगाती रहती कभी पीठ पर कभी छाती पर।"

मास्टर बोला—'तो उस हालत में मालिक रिटर्न टिकट खरीद दिये बिना ही डेरा गाँजी खाँ को दौड़ लगा देता, और बरनीपन ईष्टर्न रेलवे पकड़ कर अपने बाप के घर चला जाता।"

"मास्टर जब तब हँसी योग्य बात कहता है। किन्तु हँसता नहीं है।"

+ + +

पूपू दीदी ने कहा—"हमारे मास्टर साहब के सम्बन्ध में यदि कहानी रचना करनी पड़े तो उसे तुम कैसे रचते ?

"तो उस हालत में मैं दस लाख वर्ष छोड़ देता।"

"इसका अर्थ यह है कि तुम अद्भुत कहानी बनाते ? फिर भी वर्तमान काल के विरोध पक्ष के साक्षी की शंका न रहती।"

"कोई भी साहित्यवाला कभी साक्षी का भय नहीं करता। असल बात यह है कि मेरी कहानी के फूट उठने में युगान्तर की जरूरत पड़ेगी। क्यों, इसी को समझा कर बता रहा हूँ। पृथ्वी की सृष्टि के प्रारम्भिक माल असबाब पत्थर-लोहा प्रभृति मोटी-मोटी-भारी-भारी चीजों के ही होते थे। उनकी ही ढलाई पिटाई बहुत दिनों तक चलती रही। कठोरतः लज्जाहीनता बहु युग व्यापी थी। अन्त में कोमल मिट्टी ने पृथ्वी को श्यामल ढँकने से ढक कर मानो सृष्टिकर्ता की लाज बचा ली। तब जीव जन्तु, हाड़ मांस के बोझ ले कर प्रकट हो गये। मोटे मोटे वर्म पहन कर वे दो सौ पाँच सौ मन की असभ्य पूछ खींच खींच कर घूमने फिरने लगे। वे दर्शनधारी जीव थे। किन्तु मांस वहन कारियों का वह दल सृष्टिकर्ता को पसन्द ही नहीं हुआ। फिर बहु युग-व्यापी निष्ठुर परीक्षा चलने लगी। अन्त में मन वहनकारी मनुष्यों का आगमन हुआ। पूँछों की अधिकता दूर हो गयी हाड़ मांस परिमित हो गया। कड़ा चमड़ा कोमल हो गया, सिंग नहीं रहा, खुर नहीं रहे, चार पैर घट कर दो पैर बन गये। समझ में यह बात आ गई कि विधाता अपना हथियार सृष्टि के युग को क्रमशः सूक्ष्म बना देने के लिये चला रहे हैं। स्थूलता-सूक्ष्मता में मनुष्य जड़ित हो गया है, मन के साथ मांस की ठेला ठेली-मारा मारी चल रही है। विधाता पुनः सिर हिला रहे हैं—उहूँ, यह तो नहीं हुआ। लक्षण दिखाई पड़ता है

कि यह रचना भी टिकने वाली नहीं है। यह अपने को आप ही आश्चर्य जनक वैज्ञानिक उपायों से विशुद्ध बना देगी। कितने ही लाख वर्ष बीत जायेंगे। मांस झर पड़ेगा, मन एक स्वर हो जायगा। उसी विशुद्ध मन के युग में तुम्हारे मास्टर साहब शरीर-रिक्त क्लास में बैठे हुये हैं। सोच कर देखो, शिक्षा देने की उसकी प्रणाली है मन के ऊपर मन को बिछा कर छात्रों के साथ अपने आप को मिला देना। कोई भी बाहरी बाधा नहीं है यह कह सकते हैं।"

"स्थूल बुद्धि की भी बाधा नहीं है।"

"उसके न रहने से बुद्धि मात्र ही बेकार हो जाती है। उत्तम-अधम, मूर्ख-बुद्धिमान को भेद है ही। चरित्र विविध प्रकार के हैं। गाँवों का वैचित्र्य है, इच्छा का स्वातन्त्र्य है। अब वे ही अच्छे मास्टर हैं, जो उस एक में प्रवेश कर सकते हैं। अब शिक्षा हृदय में है।"

"दादा जी, स्कूल कहाँ है, मुझे ठीक समझ में नहीं आता।"

"संसार में तीन निवास स्थान है—एक है समुद्र तल में, एक है भूतल में, और है आकाश में, जहाँ सूक्ष्म हवा है, सूक्ष्मतर प्रकाश है। यही स्थान आज आगामी युग के लिये खाली पड़ा हुआ है।"

"तो इस हालत में तुम्हारा क्लास चल रहा है। उसी हवा में उसी प्रकाश में, किन्तु छात्रों का चेहरा कैसा है?"

"समझा देना कठिन है, उनका आधार तो अवश्य ही है, किन्तु आकार का आधार नहीं है।"

"तो यही जान पड़ता है कि विविध रंगों के प्रकाश से वे बने हैं।"

"यही बात सम्भव है। तुम्हारे विज्ञान-मास्टर ने तो उस दिन समझा दिया था। सारे संसार में सूक्ष्म प्रकाश की कणा ही बहु रूप धारण करके स्थूल रूप का मान कर रही हैं। उस दिन प्रकाश अपने

आदिम सूक्ष्म रूप में ही प्रकट होगा। तुम सभी क्लास में प्रकाश फैला कर बैठोगे। उस दिन ओटिन स्नो वाले एक दम दीवालिया हो जायेंगे।"

"दीवालिया क्यों, प्रकाश हो जायँगे।"

"दीवालिया होजाने का अर्थ ही है प्रकाश हो जाना।"

"मैं किस रंग का प्रकाश होऊँगी दादा जी?"

"सुनहले रंग का।"

"और तुम?"

"मैं एक दम विशुद्ध-रेडियम।"

"उस दिन प्रकाश-प्रकाश में लड़ाई तो न होगी? इलेक्ट्रन को लेकर छीनाझपटी तो न होगी?"

"तुमने चिन्ता में डाल दिया। जान पड़ता है कि लीग आफ लाइट्स की जरूरत पड़ेगी। इलेक्टन को लेकर खींच तान की अफवाह अभी से सुन रहा हूँ।"

"यह तो अच्छा ही है दादा जी। वीर रस की कविता तुम्हारी भाषा में उज्ज्वल वर्ण में वर्णित होगी। वही, भाषा तो रहेगी?"

"शब्दों की भाषा एक दम भावों की भाषा में जा पहुँचेगी, व्याकरण कंठस्थ न करना पड़ेगा।"

"अच्छा, गान?"

"गान होगा रंगों का समूह, बहुत सहज न होगा। जब तान छिट-कता रहेगा, तब आकाश में जहाँ-तहाँ झलक मारता रहेगा। उस समय के तानसेन लोग—दिगन्त में अरोरा बोरियालिस बना देंगे।"

"और तुम्हारा गद्यकाव्य क्या होगा, बताओ तो?"

"उसमें लोहे का इलेक्ट्रन भी घुसेगा सोने का भी।"

"उस दिन को दादी जी पसन्द न करेंगी।"

"मुझे भरोसा है कि उस समय के नाजी लोग सुग्ध हो जायँगे।"

"तो उस हालत में उस प्रकाश के युग में तुम्हारे नाजी के ही रूप में जन्म लूँगी। इस बार के लिये देहधारिणी के ऊपर धैर्य रक्खो। अब मैं सिनेमा में जा रही हूँ।"

"क्या खेल होने की पारी है?"

"वैदेही का बनवास।"



१५

दूसरे दिन प्रातःकाल का जलपान करने के समय मेरे निर्देशानुसार पूपे दीदी एक पथरी में भिगाया हुआ चना और गुड़ ले आई। वर्तमान युग में पुराकालीन खाद्य-विधि में इतिहास-प्रवर्तन करने में मैं लग गया हूँ। दीदी ने पूछा—"चाय बनेगी?"

मैंने कहा—"नहीं खजूर का रस!"

दीदी बोली—"आज तुम्हारा मुँह ऐसा क्यों देखती हूँ? क्या कोई खराब सपना तुमने देखा है?"

मैंने कहा—"सपने की छाया तो मन के ऊपर से यातायात कर ही रही है, सपना भी विलीन हो जाता है, छाया का भी चिन्ह नहीं रहता। आज तुम्हारे लड़कपन की एक बात बार-बार याद पड़ रही है, इच्छा होती है कि कह डालूँ।"

"कहो न!"

"उस दिन लेखन कार्य रोक कर बरामदे में बैठा हुआ था। तुम थी, सुकुमार भी था। सन्ध्या हो चली, रास्तों पर बत्तियाँ जला दी गयीं मैं बैठा हुआ सत्ययुग की बातें बना-बना कर कह रहा था।"

"बना कर कह रहे थे! इसका अर्थ यह है कि उसको तुम सत्य युग बना रहे थे।"

"उसको असत्य नहीं कहते। जो रश्मियाँ बैंगनी रंग की सीमा पार कर चुकी हैं, उनको हम देख नहीं सकते, इसीलिए वे मिथ्या नहीं है। वे भी प्रकाश हैं। इतिहास के उस बैंगनी प्रकाश में ही मनुष्य के सत्य युग की सृष्टि है। उसको हम प्रागैतिहासिक न कहेंगे, वह है आल्ट्रा-ऐतिहासिक।"

"और तुमको व्याख्या न करनी पड़ेगी, क्या कह रहे थे कहो।"

"मैं तुम लोगों से कह रहा था सत्ययुग में मनुष्य पुस्तकें पढ़ कर सीखते नहीं थे, खबर सुन कर जानते नहीं थे, उनका जान लेना था। हो उठना, जान लेना!

"इसका अर्थ क्या हुआ, समझ में नहीं आता?"

"जरा मन लगा कर सुनो, कहता हूँ। शायद तुमको विश्वास है कि मुझे तुम जानती हो?"

"मुझे दृढ़ विश्वास है।"

"जानती हो, किन्तु उस जानकारी में साढ़े पन्द्रह आना ही छूट है, इच्छा करने से ही यदि तुम भीतर ही भीतर मैं हो जा सकती तो उसी हालत में तुम्हारी वह जानकारी सम्पूर्ण सत्य हो जाती।"

"तो तुम यही कहना चाहते हो कि हम कुछ भी नहीं जानते?"

"जरूर ही नहीं जानते। हम सब लोगोंने मान लिया है कि जानते हैं, कि उसी परस्पर मान लेने के ऊपर ही हमारा कारोबार है।"

"कारोबार तो अच्छा ही चल रहा है।"

"चल रहा है किन्तु यह सत्ययुग का चलना नहीं है। वही बात मैं तुम लोगों से कह रहा था—सत्ययुग में मनुष्य देखने को जान

लेना नहीं जानता था, छूने का जान लेना नहीं जानता था, जानता था एक दम हो जाने का जान लेना।"

"स्त्रियों का मन प्रत्यक्ष को पकड़े रहता है। मैंने सोचा था कि मेरी बात पूपू को अतिशय अयथार्थ प्रतीत होगी, अच्छी ही न लगेगी, मैंने देखा कि जरा उत्सुकता पैदा हो गयी है। उसने कहा—"बहुत ही मजेदार बात है।"

जरा उत्तेजित हो उठी—"और बोली—अच्छा दादा जी आज कल तो साइन्स बहुत ही बुजुर्गी कर रहा है, मृत मनुष्य का गान सुना रहा है, दूर के मनुष्यों का चेहरा दिखा रहा है, फिर सुनती हूँ कि शीशे को सोना बना रहा है—इसी तरह यह भी सम्भव है कि एक ऐसा विद्युत् का खेल मचावेगा, कि इच्छा करने से एक मनुष्य किसी दूसरे में मिल जा सकेगा।"

"असम्भव नहीं है। किन्तु उस हालत में तुम क्या करोगी। कुछ भी छिपा न सकोगी।"

"सर्वनाश! सभी मनुष्यों के पास छिपा रखने के लिए बहुत कुछ है।"

"छिपा हुआ है, इसीलिये छिपाने के लिये है, यदि किसी का कुछ छिपा न रहता तो उस हालत में खेल की भाँति सब का सब कुछ जान कर ही लोक व्यवहार होता।

"किन्तु लज्जा की बात तो अनेक है।"

"लज्जा की बात सभी पर प्रकट होजाने पर लज्जा की धार चली जाती है।"

"अच्छा मेरे बारे में तुम क्या कहने जा रहे थे।"

"उस दिन मैं तुमसे पूछ रहा था, यदि तुमने सत्ययुग में जन्म

लिया होता तो अपने को क्या हो कर देखने की तुम्हारी इच्छा होती, तुम झट से बोल उठी—काबुली बिल्ली।

पूपे बहुत ही कुपित होकर बोल उठी—"कभी नहीं। यह बात तुम बना कर कह रहे हो।"

"मेरा सत्ययुग मेरा बनाया हो सकता है, किन्तु मुँह की बात तुम्हारी ही है। उसे झटपट मेरे सदृश वाचाल भी न बना सकता था।"

"इससे तुमने क्या समझ लिया था कि मैं मूर्ख हूँ।"

"मैंने यही समझ लिया था कि तुमने काबुली बिल्ली पर अत्यन्त लोभ किया था, किन्तु काबुली बिल्ली पाने का उपाय तुम्हारे पास नहीं था, तुम्हारे पास नहीं था, तुम्हारे बाबू जी बिल्ली को आँखों से देख नहीं सकते थे। मेरे मत से सत्ययुग में बिल्ली खरीदने की भी जरूरत न पड़ती थी, उसे पाना भी न पड़ता था, इच्छा करने से ही बिल्ली हो जाना सम्भव था।"

"मनुष्य से बिल्ली हो गयी—इससे क्या सुविधा हुई इससे तो बिल्ली खरीदना भी अच्छा है, न खरीद सकने से न पाना अच्छा है।"

"वह देखो, सत्ययुग की महिमा को धारणा तुम अपने मन में कर ही नहीं सकती। सत्ययुग की पूपे अपनी सीमा को बिल्ली में बढ़ा देती। सीमा का वह लोपन करती। तुम भी रहती। बिल्ली भी होती।"

"तुम्हारी इन सब बातों का कोई अर्थ ही नहीं है।"

"सत्ययुग की भाषा में अर्थ है। उस दिन तो अपने अध्यापक प्रमथ बाबू से तुमने सुना था। आलोक का अणु-परमाणु वृष्टि की तरह कणावर्षण भी है, फिर नदी की तरह तरङ्ग धारा भी है। हम अपनी साधारण बुद्धि से समझते हैं, या तो यह है, अथवा वह है, किन्तु

विज्ञान की बुद्धि में एक ही काल में दो को मान लिया जाता है। उसी तरह एक ही काल में तुम पूपू भी हो, झिल्ली भी हो—यह हुई सत्य-युग की बात।"

"दादा जी, तुम्हारी उम्र जितनी ही बढ़ती जा रही है, उतनी ही तुम्हारी बातें समझने में कठिनाई होती जा रही है, तुम्हारी कविता की ही तरह।"

"अन्त में सम्पूर्ण नीरव हो जाऊँगा, उसका यही पूर्व लक्षण है।"

"उस दिन की वह बात क्या उस काबुली बिल्ली के बाद आगे न बढ़ी ?"

"आगे बढ़ गई थी। सुकुमार एक कोने में बैठा हुआ था, वह सपने में बातें कहने की ही तरह बोल उठा—मुझे इच्छा होती है शाल वृक्ष हो कर देखने की।"

सुकुमार का उपहास करने का सुयोग पाते ही तुम खुश हो जाती थी। वह शाल वृक्ष होना चाहता है सुन कर तुम तो हँसते,हँसते व्याकुल हो उठी। इस कारण उस बेचारे का पक्ष लेकर मैंने कहा—दक्खिन की हवा बह चली कहाँ से, वृक्ष की डालियाँ फूलों से छा गई, उसकी मज्जा के भीतर से किसी मायामंत्र का अदृश्य प्रवाह बहने लगा, जिससे उस रूप की गन्ध की आतिशबाजी चलने लगी। भीतर से उस आवेग को जान लेने की इच्छा जरूर होती है। वृक्ष न हो सकने से वसन्त में वृक्ष का वह अपरिमित रोमांच कैसे अनुभव करेंगे।"

मेरी बात सुन कर उत्साहित हो उठा। बोला—"मेरे सोने के कमरे की खिड़की से जो शालवृक्ष दिखाई पड़ता है, उसका मस्तक मैं बिछौने पर लेटे लेटे देखता रहता हूँ। जान पड़ता है कि वह सपना देख रहा है।"

"शालवृक्ष सपना देख रहा है सुन कर शायद तुम कहने जा रही थी

क्या ही मूर्ख की तरह यह बात है। बीच ही में रोक कर मैं बोल उठा, शालवृक्ष का समस्त जीवन ही सपना है। वह सपने में चला आया है बीज से अंकुर में, अंकुर से वृक्ष में। पत्तियाँ ही तो उसके सपने में बातें कहती हैं।"

सुकुमार से मैंने कहा—"उस दिन जब प्रातःकाल घने बादल छा गये, वर्षा होने लगी, मैंने देखा, तुम उत्तर तरफ के बरामदे में रेलिंग पकड़े चुप चाप खड़े थे। तुम क्या सोच रहे थे बताओ तो।"

सुकुमार बोला—"मैं तो नहीं जानता कि क्या सोच रहा था।"

मैंने कहा, उसी न जानने की चिन्ता में तुम्हारा समूचा मन आकाश की तरह भर गया था। उसी प्रकार वृक्ष स्थिर भाव से खड़े रहते हैं, तो उनमें मानों एक न जानने का भाव रहता है। वही भावना वर्षा में मेघों की छाया में निविड़ हो जाती है, शीतकाल के प्रातःकाल की धूप में उज्ज्वल हो उठती है। उसी न जानने की भावना की भाषा में नरम पत्तियों में उनकी डाल-डाल में बकवाद जाग उठता है, फूलों की मंजरी में गान उठ पड़ता है।"

आज भी याद पड़ रहा है, सुकुमार की दोनों आँखें किस तरह ताकने लगीं। वह बोला—"यदि वृक्ष हो सकता तो उस हालत में वह बकवाद सिर सिर करता हुआ मेरे समूचे शरीर के ऊपर से उठ पड़ता और आकाश के मेघ की तरफ चला जाता।"

तुमने देखा कि सुकुमार वार्तालाप पर प्रभाव डाल रहा है। उसे नेपथ्य में हटा कर तुम सामने आ गयी। तुमने कहना शुरू किया—"अच्छा दादाजी, इस समय यदि सत्ययुग आ जाय तो तुम क्या होना चाहते हो।"

"तुमको विश्वास था कि मैं मैंस्टोडन अथवा मेगाथेरियम होना

चाहूँगा। क्योंकि जीव इतिहास के प्रथम अध्याय के प्राणियों के सम्बन्ध में तुम्हारे साथ कुछ ही दिन पहले मैंने आलोचना की थी। तब तरुण पृथ्वी की हड्डी कच्ची थी, उसके महादेश खूब पुष्ट रूप से जम नहीं गये थे। पेड़ पौधों का चेहरा विधाता की प्रथम तूली की रेखा की भाँति था। उस समय के आदिम अरण्य में उस समय के अनिश्चित शीतग्रीष्म के अधिकार में इन सब भीमकाय जानवरों की जीवन यात्रा कैसे चल रही है, उसकी स्पष्ट कल्पना वर्तमान काल के मनुष्य करने में असमर्थ हो रहे हैं, यह बात मेरे मुँह से तुम सुन चुकी थी। पृथ्वी में प्राणों के प्रथम अभियान के उस महाकाव्य युग को स्पष्ट रूप से जान लेने की व्याकुलता तुम मेरी बातों से समझ गई थी। इस कारण, यदि मैं अकस्मात् बोल उठता—मेरी इच्छा यही है कि मैं उस काल का रोवाँ वाला चार दाँत वाला हाथी हो जाऊँ तो तुम खुश हो जाती। तुम्हारे काबुली बिल्ली होजाने की अपेक्षा यह इच्छा अधिक दूर न जाती, तुम मुझे अपने ही दल में पा जाती। शायद मेरे मुँह से वही इच्छा व्यक्त हो जाती, किन्तु सुकुमार की बातों ने मेरे मन को दूसरी तरफ खींच लिया था।"

+ + +

पूपे बोल उठी—"जानती हूँ, जानती हूँ, सुकुमार दादा के ही साथ तुम्हारे मन का मेल अधिक था।"

मैंने कहा—"इसका एक मात्र कारण यह है कि वह बालक था, मैंने भी किसी दिन बालक हो कर ही जन्म लिया था, उसकी भावनाओं का साँचा मेरी ही भावनाओं के साँचे में था, तुम उन दिनों अपने खेल की हाँड़ी-फतली सामग्री ले कर जो स्वप्न लोक बना कर खुश होती थी, उसे मैं कुछ दूरी से देख लिया था। तुम अपने खेल के बच्चों को गोद

में ले कर जब नचाती थी, तब उसके स्नेह का रस सोलहो आने पाने की शक्ति मुझमें नहीं थी।"

पूपे ने कहा—"अच्छा उस बात को छोड़ो उस दिन तुमने क्या होने की इच्छा की थी, बताओ।"

"मैंने इच्छा की थी एक ऐसा दृश्य हो जाऊं जो बहुत जगह छेंक ले। प्रातःकाल का पहला पहर है, माघ मास के अन्तिम भाग में हवा तीखी हो चली है, पुराना पीपल वृक्ष बच्चे की तरह चंचल हो उठा है, नदी के जल में कलरव उठ पड़ा है, ऊँची नीची जमीन पर दलबद्ध वृक्ष धुँधले दिखाई पड़ रहे हैं। समूचे के पिछवाड़े खुला आकाश है। उस आकाश में एक सुदूरता है ऐसा लगता है कि बहुत दूर के उस पार से एक घंटे की ध्वनि हवा में क्षीणतम हो गयी है, मानो उसकी ध्वनि को धूप में मिला दिया है—दिन ढलता जा रहा है।"

"तुम्हारा मुँह देखने से यह बात स्पष्ट समझ में आ गयी कि एक वृक्ष हो जाने की अपेक्षा नदी वन वे आकाश को ले कर एक समग्र भूदृश्य हो जाने की कल्पना तुमको बहुत अधिक सृष्टिबहिर्भूत मालूम हुई थी।"

सुकुमार बोला—"पेड़ पौधों नदियों के ऊपर तुम बिखर का उनमें ही मिल गये हो यह समझने में मुझे बहुत मजा मिल रहा है। अच्छा, सत्ययुग क्या किसी दिन आवेगा।"

"जब तक नहीं आता, तब तक कविता है, चित्र है। अपने को भूल कर और कुछ हो जाने का वही एक बड़ा रास्ता है।"

सुकुमार बोला—"तुमने जो कुछ कहा, उसे क्या चित्र में बना चुके हो?"

"हाँ बना चुका हूँ।"

"मैं भी एक बनाऊँगा।"

सुकुमार की स्पर्धाभरी बात सुन कर तुम बोल उठी—"तुम क्या बना सकोगी ?"

मैंने कहा—"वह ठीक बनावेगा बन हो चुका भाई। तुम्हारा चित्र मैं लूँगा, अपना तुमको दूँगा।"

उस दिन हमारी बात चीत यहीं तक हुई।

+ × +

"अब मैं उस दिन की बैठक की अन्तिम बातें कहना चाहता हूँ। तुम अपने कबूतर को धान खिलाने चली गयीं। सुकुमार बैठा रहा। मैंने कहा—"तुम क्या सोचते हो बताऊँ ?"

सुकुमार ने कहा—"बताओ तो समझूँ।"

तुम सोच रहे हो कि और क्या होजाना अच्छा होगा—शायद प्रथम बादलों से छाया हुआ वृष्टि से भींगा हुआ आकाश, शायद पूजा की छुट्टियों में घरों की ओर जाने वाली नाव। इस उपलक्ष्य में मैं तुमको अपने जीवन की एक बात सुना रहा हूँ। तुम जानते हो मैं धीरू को कितना प्यार करता था। अकस्मात् टेजोग्राम से मुझे खबर मिली कि उसे टायफायड हो गया है, उसी दिन तीसरे पहर को मैं उनके घर मुंशीगंज चला गया। सात दिन सात रातें बीत गयीं। उस दिन धूप अतिशय गरम और प्रखर थी, दूरी पर एक कुत्ता करुण स्वर से आर्तनाद कर रहा था। सुनते ही मन खराब हो गया। तीसरे पहर की धूप ढलती जा रही थी, पश्चिम तरफ से गूलर वृक्ष की छाया बरामदे पर पड़ रही थी। मुहल्ले की अहीरिन ने आकर पूछा—तुम्हारे बच्चा बाबू कैसे हैं जी। मैंने कहा, सिर का कष्ट और शरीर की जलन आज घट गयी हैं। जो लोग उसकी सेवा कर रहे थे उनमें से किसी को आज

अवकाश मिल गया है, दो डाक्टर रोगी को देख कर बाहर आ गये, फुस फुस क्या परामर्श करने लगे, मैं समझ गया कि आशा का लक्षण नहीं है, चुप चाप बैठा रहा, सोचने लगा, सुन कर क्या होगा, सन्ध्या काल की अँधियारी गाढ़ी हो गयी। सामने के महानीम वृक्ष के ऊपर सन्ध्या तारा दिखाई पड़ा। दूरी पर रास्ते में पट्ठई से लदी हुई बैल-गाड़ी की आवाज सुनाई पड़ना बन्द हो गया था। सारा आकाश मानो झनझन् कर रहा था। न जाने क्यों मैं मनही मन कह रहा था पश्चिम आकाश से वह देखो रात्रि रुपिणी शान्ति, स्निग्ध, काली, स्तब्ध चली आ रही है। यह तो प्रति दिन ही आती है, किन्तु आज आयी है एक विशेष मूर्ति लेकर स्पर्श लेकर। मन ही मन मैंने कहा—ऐ शान्ति, ऐ रात्रि तुम मेरी बहन हो, मेरी अनादि काल की बहन हो। दिन के अवसान के दरवाजे के पास खड़ी हो कर अपनी गोद के पास मेरे वीर भाई को तुम खींचलो। उसकी सारी ज्वाला एक बार शान्त हो जाय—दोपहर बीत गया, रोगी के सिरहाने से एक रुलाई की ध्वनि उठ पड़ी। निस्तब्ध रास्ते से डाक्टर की गाड़ी अपने घर लौट गयी। उस दिन अपने समस्त मन को भरदेने वाली रात्रि का रूप मैंने देख लिया। मैं उसमें आच्छन्न हो गया था। जिस तरह पृथ्वी अपनी स्वतं-त्रता निशीथ के ध्यानावरण में विलीन कर देती है।"

"न जाने सुकुमार के मन में क्या विचार उठ पड़ा। वह अधीर हो कर बोल उठा—किन्तु तुम्हारी वह बहन मुझे अन्धकार के भीतर से इस तरह चुपके चुपके न ले जायगी। पूजा की छुट्टि के दिन जिस दिन सबेरे दस बजेंगे, किसी को स्कूल न जाना पड़ेगा, जिस दिन, सभी लड़के रथतले के मैदान में बैट बाल खेलने चले जायँगे, उस दिन मैं

खेल की ही तरह अकस्मात् छुट्टी के दिन की धूप में आकाश में लीन हो जाऊँगा,

सुन कर मैं चुप हो रहा, कुछ भी नहीं बोला।"

× × ×

"तुमसे कहने का विचार मैंने किया था। आज कहता हूँ। निताई चाहते थे कि सुकुमार कानून पढ़े, सुकुमार चाहता था कि वह नन्द-लाल बाबू से चित्र बनाना सीख ले। निताई ने कहा—चित्रांकन विद्या से अंगुलियाँ चलती हैं, पेट नहीं चलता।"

सुकुमार बोला—"मुझे चित्रों की क्षुधा जितनी है पेट की क्षुधा उतनी नहीं है।

निताई ने कुछ कड़े स्वर में कहा—

"तुमको यह बात प्रमाणित करने की जरूरत नहीं पड़ी है, वह सहज ही में चल रहा है।"

यह बात उसके मन में भद्दी लगी, किन्तु हँस कर उसने कहा—"बात सच है—इसका प्रमाण देना चाहिये।"

"पिता ने समझा कि अब यह लड़का कानून पढ़ने लगेगा। सुकुमार के बरीसाल के नाना पागल सरीखे मनुष्य है। सुकुमार का स्वभाव उनके ही समान का है, चेहरे में भी सादृश्य है। दोनों के ऊपर दोनों का प्रेम परम मित्र की तरह है। दोनों में परामर्श हुआ। सुकुमार को कुछ रुपया मिला। वह विलायत चला गया, कोई नहीं जानता, अपने पिता को चिट्ठी लिख गया—आप नहीं चाहते कि मैं चित्र अंकन करना सीखूँ। आप चाहते हैं कि मैं अर्थोपार्जन विद्या सीखूँ। मैं यही करने जा रहा हूँ। जब शिक्षा समाप्त होगी, मैं प्रणाम करने आऊँगा आशीर्वाद दीजिये।"

"उसने किसी को नहीं बताया कि वह कौन विद्या सीखने गया है। उसके डेस्क में एक डायरी मिली। उससे यह बात मालूम हुई कि वह हवाई जहाज की माझीगिरी सीखने के लिये यूरोप गया है, उसका अन्तिम भाग मैं नकल कर लाया हूँ। उसने लिखा है—

"मुझे याद है एक दिन मैंने अपने छत्रपति पक्षीराज पर चढ़कर पूपू दीदी को चन्द्रलोक से उद्धार कर लाने के लिये यात्रा की थी, वह मेरी यात्रा अपनी छत के एक छोर से दूसरे छोर तक हुई थी। अब मैं अपने यंत्रमय पक्षी राज को बश में करने के लिये जा रहा हूँ। यूरोप में चन्द्रलोक में जाने का आयोजन चल रहा है। यदि सुविधा मिल जायगी तो मैं भी यात्री दल में नाम लिखाऊँगा। सम्भवतः पृथ्वी की आकाश प्रदक्षिणा में हाथ पक्का कर लेना चाहता हूँ। एक दिन उसके दादा जी का चित्र बनाना देख कर जो चित्र बनाया था उसे देख कर पूपू दीदी हँस पड़ी थी। उसी दिन से लगातार दस साल तक मैं चित्र अंकन करने का अभ्यास कर रहा हूँ। किसी को मैंने दिखाया नहीं है। आज कल के अंकित दो चित्र पूपू के दादा जी के लिए रख जा रहा हूँ। एक चित्र जल-स्थल-आकाश एक साथ मिलन दिखा रहा है, और दूसरा है मेरे बरीसाल के दादा जी का है। पूपू के दादा जी यदि दोनों चित्रों को दिखा कर पूपू दीदी की उस दिन की उस हँसी को वापस ला सकें, तो ठीक ही होगा, अन्यथा इन्हें फाड़ कर फेंक दे। इस बार की मेरी यात्रा में चन्द्रलोक के मध्य पथ में ही पक्षीराज का पंख टूट जाना कोई असम्भव बात नहीं है। यदि टूट ही जायँ, तो एक ही क्षण में मृत्युलोक में जा पहुँचूँगा—सूर्य प्रदक्षिणा के साथ एक दम ही पृथ्वी के साथ मिल जाऊँगा। यदि मैं जीवित रहा। आकाश सागर को पार करने में यदि सफलता मिल जाय, तो फिर किसी दिन

पूपू दीदी को साथ लेकर शून्य मार्ग में घूम आऊँगा। यही इच्छा मेरे मन में विद्यमान है। सत्ययुग में शायद इच्छा और घटना दोनों एक थीं। चेष्टा करूँगा कि ध्यान योग से इच्छा को ही घटना रूप में मान सकूं। बाल्य काल से अकारण ही अकाश की तरफ ताकते रहने का मुझे अभ्यास पड़ गया है। वह आकाश पृथ्वी के लाख-लाख युगों की कोटि कोटि इच्छाओं से पूर्ण है। ये विलीयमान इच्छाएँ विश्व सृष्टि के किस काम में लगेंगी कौन जाने। मेरे दीर्घ, विश्वास से बाहर निकली ये इच्छाएं उसी आकाश में उड़कर चक्कर लगावें, जिस आकाश में मैं आज उड़ने जा रहा हूँ।"

\+ + +

पूपू दीदी ने व्याकुल हो कर पूछा—"सुकुमार दादा का वर्तमान समाचार कैसा है?"

मैंने कहा—"इसका ही पता नहीं चल रहा है, इस लिये उसके पिताजी पता लगाने के लिये आज विलायत यात्रा कर रहे हैं।"

दीदी का चेहरा उदास हो गया। धीरे-धीरे उठ कर अपने कमरे का दरवाजा उसने बन्द कर दिया।

मैं जानता हूँ। सुकुमार का बनाया पूपू दीदी का बालोचित चित्र उसने अपने डेस्क में छिपा रक्खा है।

मैं चश्मे को पोंछ कर सुकुमार के मकान की छत पर चला गया। वह टूटा हुआ छाता वहाँ नहीं है। आतिश बाजी की वह अधजली—काठी भी नहीं है।